Digitized by eGangotri

udbhrant prem

उद्भ्रान्त प्रेम

(गद्य काव्य)

121

chandra shekhar

—What is writ is writ,
Would it were worthier.''

Childe Harold's Pilgrimage.

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-एजेंसी, बाँकीपुर, (पटना)

Hindi sahity, patna

1936

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उद्भ्रान्त प्रेम

(गद्य—काव्य)

मूल लेखक

पंडित चन्द्रशेखर मुखोपाध्याय

अनुवादक

पंडित कृष्णकुमार मुखोपाध्याय

'वलिवेदी पर' 'फांसी' 'समाज-चित्र' 'दुर्गावती' 'दो वीर बालक'

'फ्रांस की राज्यक्रांति' इत्यादि ग्रन्थों के रचयिता

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-एजेंसी,

पो० बाँकीपुर, पटना।

सन् १९२८ ई०

••स्कैन्ड/ Scanned••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उद्भ्रान्त प्रेम

(गद्य—काव्य)

मूल लेखक

पंडित चन्द्रशेखर मुखोपाध्याय

अनुवादक

पंडित कृष्णकुमार मुखोपाध्याय

'वलिवेदी पर' 'फाँसी' 'समाज-चित्र' 'दुर्गावती' 'दो वीर वालक'

'फ्रांस की राज्यक्रांति' इत्यादि ग्रन्थों के रचयिता

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-एजेंसी,

पो० बाँकीपुर, पटना।

सन् १९२८ ई०

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रकाशक—
हिन्दी-साहित्य-एजेंसी,
पो० बाँकीपुर, पटना ।

acc. no. 15259
प्र० 0-12-0

12

दूसरी बार मूल्य ।||)

मुद्रक—
जे० पी० अरोड़ा,
लक्ष्मी प्रेस, बुलानाला, काशी ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक बंगला के सर्वश्रेष्ठ गद्य-काव्य "उद्भ्रान्त प्रेम" के पच्चीसवें संस्करण का अनुवाद है। इसके मूल लेखक पण्डित चन्द्रशेखर मुखोपाध्यायजी ने केवल इस एक पुस्तक को लिख कर जो नाम और यश प्राप्त किया है, वह शायद ही कोई लेखक प्राप्त करता होगा। लेखक महोदय की प्रियतमा पत्नी की परलोक-प्राप्ति से उनके तरुण हृदय के करुण अन्तस्थल में जो शोकानल धधक उठा था, यह पुस्तक उसी अनल की कुछ बिखरी हुई चिनगारियां हैं। परन्तु खूबी यह है कि, इसमें केवल विपत्नीक के कवि की योग-गाथा ही नहीं, वरण राजनीति; समाज नीति, और धर्मनीति इत्यादि सब विषयों का ही यथेष्ट विश्लेषण है।

संसार की कितनी ही भाषाओं में इस पुस्तक का अनुवाद हो गया है तथा यही कारण है कि पण्डित चन्द्रशेखर मुखोपाध्याय का नाम संसार में आज सुपरिचित है। मैंने भी हिन्दी में इस पुस्तक को अनुवाद करने का दुःसाहस किया है। अनुवाद कहां तक ठीक हुआ है इसका विचारक मैं नहीं हूँ। एक भाषा की पुस्तक को दूसरी भाषा में अनुवाद करना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कितना कठिन है, यह केवल अनुवादक ही जान सकता है। किसी लज्जावती वधु को एक के अन्तःपुर से दूसरे किसी के अन्तःपुर में ले जाने के लिये जिस सावधानी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार एक भाषा की वस्तु को दूसरी भाषा में ले जाने के लिये भी उतनी ही सावधानी की जरूरत होती है—कहीं उसकी वह मनोहर लज्जा; उसकी वह मर्यादा, नष्ट न हो जाय! इसीलिये कह रहा था, "उद्भ्रान्त प्रेम" जैसी पुस्तक को अनुवाद करना शायद मेरे लिये दुःसाहस की बात है, परन्तु अपनी तरफ से मैं केवल इतना कह सकता हूँ कि, मैंने भरसक मूल पुस्तक के भाव को अक्षुन्न रखने की चेष्टा की है। लज्जावती वधु की लज्जा बंगला के अन्तःपुर में जिस सुरक्षित अवस्था में थी, हिन्दी के अन्तःपुर में भी उसकी लज्जा उसी सुरक्षित अवस्था में रहे, इसका प्रयत्न मैं बंगला और हिन्दी के व्यवधान में बराबर करता रहूँ, उस पर भी कहीं अगर मुझसे कुछ त्रुटि हो गई हो तो पाठक कृपया मुझे प्रकाशक के द्वारा सूचित कर दें, मैं अवश्य उसके निवारण की चेष्टा करूँगा,—अस्तुः—

अनुवादक।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उपहार

....

....

....

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रथम पुष्पांजलि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वह मुखड़ा—

वह मुखड़ा — कैसे कहूँ, वह मुख कैसा था ! स्मरण आते ही सिर घूमने लगता है और साथ ही कानों और आँखों में मानों बिजली सी चमक जाती है—बदन के नस नस में बिजली का प्रवाह दौड़ने लगता है ; फिर मैं कैसे बताऊँ कि वह मुख कैसा था ? अप्सरा के सुमधुर कण्ठ से निकले हुए गीत—शब्द की भांति, दूर से आती हुई वीणा के झंकार को भांति, धीमी ज्योत्स्ना में नदी-हृदय से निकले हुए विरह संगीत की भांति,—फूलों के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सौरभ से पूर्ण साध्य समीरण की भांति—भाषा में वैसे शब्द नहीं, मनुष्य की वैसी चिन्ताशक्ति नहीं, मेरी इस स्वप्नमयी कल्पना में वैसा कवित्व नहीं, सुननेवाले का वैसा दिल नहीं, संसार में उपमा का वैसा कोई स्थान नहीं—सारांश यह कि वैसा सुखशांति, सौन्दर्य और पवित्रता से परिपूर्ण मैं कुछ भी नहीं देखता।—हरे! हरे!! कैसे समझाऊँ, कैसा था वह मुखड़ा—क्या एक बार और देख न पाऊँगा? और कुछ नहीं केवल देखना चाहता हूँ—सिर्फ आँखों से देखना चाहता हूँ।—एक बार देखूँगा, बस! हाँ और देखते देखते एक बार रोऊँगा, इसका मूल्य? चाहे जो लगे, वह मैं दूँगा। एक बार देखूँगा—इस जन्म में अन्तिम बार एक बार देखूँगा और एक बार रोऊँगा। किसी का नुकसान नहीं, किसी का अनिष्ट नहीं, किसी के सुख में बाधा न पहुँचेगी, कोई व्यथित न होगा और न कोई जानेगा, न कोई सुनेगा—क्या फिर भी एकबार मैं देख न पाऊँगा?

अच्छी चीजों का दाम अधिक होता है—वह मैं जानता हूँ! गरज के अनुसार मूल्य लगाया जाता है, यह भी मैं जानता हूँ। इस विश्वकार्य के यदि कोई कर्त्ता हों,—तो मैं पूछा चाहता हूँ कि तुम क्या चाहते हो?—उस रत्न को एक बार मुझे दिखाने के लिये, क्या माँगते हो? जीवन को लेलो, अथवा; उससे भी अधिक कष्टकर—जीवन मत लो, जीवन न लो,—जीवन का सर्वस्व लो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

—मेरे जीवन का सर्वस्व लोगे ? यह मूल्य देना मुझे न अखरेगा। ले लो न—दुआ करूँगा—धन्यवाद दूँगा। क्या है मेरे जीवन का सर्वस्व ? मर्मान्तक यंत्रणा, स्मृतिरूपी बिच्छू का दंशन, सब कामों में उदासीनता—सारे विषयों पर तुच्छ भाव, ईश्वर पर अविश्वास—येही मेरे सर्वस्व हैं—क्या ये लोगे ? क्या ही सुखकर जीवन है ! ईश्वर पर अविश्वास, वह जीवन कैसे सुख का है ! तुम्हें आशा है, भरोसा है—मुझे कुछ नहीं। तुम स्वर्ग या नरक किसी स्थान पर जाओगे मगर मैं सदा के लिये लुप्त हो जाऊँगा। तुम शायद बैकुण्ठ में बास करोगे, मैं मट्टी हो जाऊँगा। तुमने अगर दुनियाँ में आकर कुछ खोया है तो उसे फिर पा जाओगे; मगर मैंने जो खोया है, वह मुझे फिर न मिलेगा। तुम सुखी रहो, दुःखी रहो, संसार के ही रहोगे, मगर मैं एक पथिक हूँ—आज आया हूँ, कल चला जाऊँगा। तुम अनन्तकाल के गवाह हो, मैं पानी का बुलबुला हूँ—अभी उठा हूँ—अभी गायब हो जाऊँगा। केवल एक चीज़ थी, जो मैं दे न सकता था। स्वर्ग के लिये न देता, निर्वाण-मुक्ति के लिये नहीं देता, याद भूलने के लिये न देता, मन की बात को बदलने के लिये भी न देता,—यही नहीं—इच्छामृत्यु के बदले भी न देता—वह बदलने की चीज़ न थी—देने की चीज़ न थी,—नहीं तो दे देता ! वह थी तो सही, पर अब नहीं है। दिल के पिंजड़े में एक चिड़िया पाली थी—उसे प्यार करता था—उसकी देखरेख

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

करता था। अहा वह कैसी मीठी मीठी बोलियाँ बोलती थी। वह प्यारी चिड़िया एक दिन साँकल काट कर उड़ गई। सारी दुनियाँ ढूँढ़ डाली, उसका पता न लगा। जिधर मैं देखता हूँ, केवल उसका अभाव ही आँखों को अन्धा कर देता है। उसका पता लगाने के लिये कितनी ही धर्म पुस्तकों को पढ़ डाला, कितने ही दर्शन-विज्ञानों को छान डाला—मगर कहीं भी उसका पता न लगा। कितना प्यार करता था, कितना आदर करता था—झूठी बात! प्यार करता था—नहीं, अभी भी प्यार करता हूँ—जबतक जीता रहूँगा, तब तक करूँगा। परन्तु, देखरेख और आदर शायद मैंने कभी भी नहीं किया। मन की बात को रोज कहूँगा कहूँगा सोचते हुए भी कभी मुँह खोलकर उससे कह न सका। मैं उसे देववाला समझता था। कभी उसका आदर न किया—न जाने क्या सोचेगी—इस डर से कभी उसका प्यार न किया। कहीं व्यथित न हो, इस भय से उस विरहिनी के विरह-श्वास-निर्मित देह को, उस शरत् की ज्योत्स्ना से रची हुई देह को कभी छाती से न लगाया।—जब कभी मैं देखता था, मुझे ऐसा ज्ञात होता था कि वह मुखड़ा मानों इस संसार का नहीं—जहाँ शोक, ताप और दुःख है, जहाँ स्वार्थ है, अपवित्रता और पाप है, वह मुख उस स्थान का नहीं है—मानों एक दूसरे ही लोक से किसी खोये हुए निधि को ढूँढ़ते ढूँढ़ते इस संसार में भूले भटके आ पड़ा हो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसीलिये कभी प्यार न कर पाया—मन में एक क्षोभ रह गया कि प्यार की चीज को प्यार न कर पाया। मेरे जीवन की डोर, मेरे इस सूनसान दिल की एकमात्र नदी, मेरे हृदयाकाश की एक ही ध्रुवतारा—मेरा सर्वस्वधन कहाँ चला गया ? किधर चला गया ? क्या हुआ ? मर जाने के बाद मनुष्य का क्या होता है ? मिट्टी ? वह मुखड़ा—हरे ! हरे ! किस विधना ने उस मुख को बनाया था, संसार सौन्दर्य की प्रतिमा की भांति वह मुख मिट्टी हो जायगा ? इसी से तो कहता हूँ कि संसार में कोई नियम नहीं, नियंता नहीं; विधान नहीं, भले बुरे का विचार नहीं, पवित्र और अपवित्र का ज्ञान नहीं, दया और ममता नहीं, स्नेह और प्रेम नहीं—है केवल निष्ठुरता, परदु:ख-प्रियता,—और है दूसरे के सुख में कातरता। परन्तु मैं क्या कह रहा था—बातों बातों में वह तो भूल ही गया—

वह मुखड़ा ! छाती पर आकर मानों कलेजा मसोस देता है, दिल पर उठकर मानों दिल का मुँह बाँध देता है—मर्मकथा को कहीं कह न डालूँ।—कैसे कहूँ—कैसा था वह मुखड़ा ! विद्यापति की कविता की भांति; प्रणय के प्रथम पुष्पांजलि की भांति समाधिगत प्राण की स्मृति की भांति, निराले कानन में शाम की धीमी हवा की भांति, बाल्यकाल की मधुर स्मृति की भांति, अचानक याद आये हुए बहुत दिनों पहले की कोई सुखस्वप्न की भांति, मृदु-निनादिनी क्षुद्र वीचिमालिनी जाह्नवी के उदार वक्षस्थल पर पौर्ण-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मासी की रात की वायुविकम्पित शरत्प्रभा की भांति,मेरे उन बीते हुए समय की भांति—वह मुखड़ा ! उस मुख पर—प्रेम और भिक्षा से भरी हुई वह हँसती हुई आँखें—उसकी दृष्टि—मानों कुछ डरी हुई; परन्तु अमृतप्रवाहिनी वह दृष्टि—जो प्रति बार पलक मारती हुई मुझसे कहती थी—इस दुनियाँ को मैं भलीभांति नहीं पहचानती—मैं इस दुनियाँ की नहीं हूँ, मुझे पैरों से मत ठुकराना; और वह हँसी—वह हँसी से भरी हुई हँसी—दिल के आईने की तरह वह हँसी; वह छोटा सा दिल और उसमें इतना गहरा प्रेम—हाय मैं बलि जाऊँ ! तुमने ये सृष्टि क्यों की थी भगवन् ? याद आते ही मानों कोई हृदय पर पत्थर रख देता है ।—मानों कितनी ही असफल अभिलाषाओं के, अपूर्व इच्छाओं के, धधकती हुई प्यास के, चुभती हुई निराशा के, समाधिस्थ अनुराग के—अधीर प्रेतों का दल, अँधेरे गढ़े में हाहाकार मचाने लगते हैं ! वह मुखड़ा—पहले पहल वह मुखड़ा जब देखा था; सोचा था अवश्य ही इस सृष्टि का कोई स्रष्टा होगा, इस चित्र का कोई चित्रकार भी होगा—अन्धे नियम से यह सृष्टि नहीं हो सकती है; परन्तु उस दिन के बाद वह दिन—जिस दिन उस मृत्युविवर्णित देह को, आँधी से बिखरी हुई वसन्तलता को, उस ग्रीष्मकाल के सताये हुए फूल को, उस प्रभात समय के म्लान चन्द्रमा को, मेरी उस उजड़ी हुई आशा को—गोद में ली थी; उस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दिन सोचा था—इस परिदृश्यामान संसार में विचार नहीं है, पर-सुख की कामना नहीं है—उस दिन तक की सब बातें दिल के अन्दर एक बाढ़ की तरह बह जाती हैं, कुछ भी याद नहीं आता, तुमसे उसे बनाने के लिये किसने कहा था ? और अगर बनाया ही तो तोड़ क्यों डाला ? क्या केवल अपनी रचना का कौशल दिखाने ही के लिये यह सब ढोंग था ? क्या केवल मुझे सताने के ही लिये यह चातुर्य था ?—वह दिन, जिस दिन मैं अकेला हो गया—कैसे समझाऊँ मैं कि, वह दिन कैसा था ! वह दिन मेरे जीवन के शेष उत्सव की रात ! उस दिन तुमने जिसे तोड़ डाला, क्या कभी उसे बना भी सकते हो भगवन् ? एक बार पूछा नहीं, न अनुमति ही ली, व्यथित के मुँह की ओर भी देखा नहीं—तबियत में आई नहीं कि छीन ली ! अच्छा ही किया—तुमको दोष नहीं देता—तुमने जो किया वह तुम्हारे योग्य था। तुम महान् हो, मैं क्षुद्र हूँ; तुम शक्तिवान् हो, मैं दुर्बल हूँ; इस संसार में जो कुछ भी दीख रहा है वह सब तुम्हारा ही है—मेरा तो कुछ भी नहीं है; इसीलिये मेरा जीवन सर्वस्व, मेरा एक-मात्र उत्सव—क्यों न छीन लोगे, बलवान होकर जिसने क्षुद्र को न सताया तो उसका महत्व ही क्या रहा ? दुर्बल पर जिसने अत्याचार न किया उसकी शक्ति ही कहाँ रही ? जो दीन और हीन हो, जिसका कोई अपना न हो, जिसको कहीं तसल्ली की जगह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

न हो, जिसको किसी और से प्रेम न हो और न जिसको कोई प्रेम करने को रहा हो; भविष्य जीवन जिसका अन्धकार से भरा हो, भूतपूर्व जीवन जिसका आग में जल रहा हो, अर्थात् अन्धकार से अधिक डरावना हो, तथा वर्तमान में जिसके न उजेला ही हो और न अन्धकार,—केवल उजेले अन्धकार में, केवल अंधेरे उजेले में जिसको विराट् मरुभूमि दिखाई देती हो, उसे जिसने न सताया, उसे जिसने पैरों से न ठुकराया, तो उसका महत्व ही क्या है—वह किस लिये बड़ा है? अच्छा ही किया है! सिंह जंगल के दुर्बल पशुओं को पकड़ कर खाता है—सिंह पशुराज है। पापी यवनों ने हमको कैसा सताया था—वे दिल्ली के बादशाह थे! और तुम विश्वब्रह्माण्ड के राजा, हमको क्यों न जलाओगे! जो छोटा हो, बहुत छोटा हो, क्षुद्र हो, क्षुद्रादपि क्षुद्रतर हो उसके आर्तस्वर से तुम्हारा संसार अगर गूँज न उठा तो तुम राजा कैसे? छोटे को पैरों से ठुकराने का नाम ही राजधर्म है; जो प्रतिकार न कर सके, उसके ऊपर अत्याचार का आरा चलाना ही तो राजधर्म है; यह मैं जानता हूँ—परन्तु कह क्या रहा था, भूल ही गया—

वह मुखड़ा! मेरे कलेजे के टुकड़े को—कलेजे से किसने निकाल लिया! संसार में ऐसा कौन है जो उसीसे मेरे सूने कलेजे को फिर भर दे। सारे संसार को उस सूने कलेजे में भर कर देख लिया। सारी मानवजाति को उसमें भर कर देख लिया—परन्तु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहाँ—भरता कहाँ है?—सारा कलेजा तो सूना ही रह जाता है।—न जाने किस एक वस्तु का अभाव कलेजे पर अखरता रहता है। संसार का अनन्त सौन्दर्य आँखों के सामने फैला हुआ है—परन्तु उसमें भी न जाने क्या एक कुछ नहीं है। वही घर-द्वार, बचपन के वही मित्र भी हैं; लीलामयी जाह्नवी उसी प्रकार हिलती, डोलती, हँसती हुई, बह रही है—सौन्दर्यगर्विता रमणी की तरह—कहीं पैर मिट्टी से न छू जाय; आकाश से चन्द्रमा उसी तरह हँसता हुआ पृथ्वी पर अमृत बरसा रहा है; उसके नीचे छोटी सी चिड़िया भी उसी तरह उड़ कर अपने मधुर संगीत की तान अभी भी भर रही है। सब वही है—केवल मैं अब वह न रहा।—न जानें क्यों यह मालूम हो रहा है कि क्या मानों 'नहीं' है।—जिधर देखता हूँ उधर वही एक विराट अभाव का दृश्य! मन में वह स्थिति-स्थापकता नहीं, सौन्दर्य में वह माधुर्य नहीं, गंध में वह सौरभ नहीं, संगीत में वह मूर्च्छना नहीं; संसार में वह वैचित्र नहीं; मनुष्य के मुख पर वह देवभाव नहीं; और अन्तर में न जाने क्या नहीं है। क्या नहीं है? मुझे क्या अभाव है?

वह मुखड़ा! अब नहीं है—एक दिन था, अब नहीं है। वह प्रेम से भरा हुआ मुखड़ा—वह कोमलता, रमणीयता, कमनीयता पवित्रता से भरा हुआ मुखड़ा—वह अमरावती के सौन्दर्य सदृश्य स्वर्गीय मुखड़ा—जिसके साथ साथ सब कुछ चला गया—वह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मुखड़ा—किसने छीन लिया ? क्या इस विचार का कोई विचारक नहीं—क्या इस नीति का कोई नियन्ता नहीं ! यदि कोई हो तो वह अनन्त शक्ति का अधिकारी तो अवश्य है ; परन्तु है बड़ा निर्दय—बड़ा पत्थर हृदय और बड़ा ही कठोर ! इस संसार के शरीर का भी कोई आत्मा है या नहीं; चिन्ता की शक्ति है या नहीं, मालूम नहीं; परन्तु मैं जानता हूँ, मुझे पूर्ण विश्वास है—मैं यह खूब कह सकता हूँ कि, इस संसार का कोई हृदय नहीं है। क्यों नहीं है जानते हो ? संसार कारण को मैं कठोर निर्दय क्यों कहता हूँ सुनोगे ?

संसार में ऐसा कुछ है, ऐसा कुछ रह सकता है; यह तो मैं जानता ही नहीं था। किसने बतलाने के लिये उस विधाता को सिर की सौगन्ध दी थी ? किसने जानना चाहा था ? फिर क्यों बतलाया ? मैं जिसे न जानता था; उसे मुझे क्यों जानने दिया ? तुम्हींने जब दिया तो फिर तुमने छीना क्यों ? और जब छीन ही लेना था तो दिया क्यों ? फिर जब छीन ही लिया तो उसे भूलने क्यों नहीं देते ? जो कभी भी लौट कर न मिलेगा उसके लिये रोते रोते क्या आँखों को नष्ट कर दूँ ? क्या यही तुम चाहते हो ? वह चली गई, उसका प्रेम चला गया—परन्तु मेरा प्रेम क्यों नहीं जाता ? हमेशा के लिये जिसे आँखों के सामने से हटा लिया, उसे दिल के सामने से भी क्यों नहीं हटा लेते ! मैं चाहता हूँ कि भूल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जाऊँ, परन्तु भूला नहीं जाता। संसार का नियम ? हँसी आती है—संसार का भी कोई नियम होता है ? सब तुम्हारी इच्छा है। जो चाहो कर सकते हो; तब संसार में—केवल अपनी बात नहीं, इस विराट संसार में इतना दुःख क्यों ?—फूलों में काँटा क्यों—चन्द्रमा में कलंक क्यों—पुण्य की यह कठोर मूर्ति क्यों—नरक का पथ कुसुमास्तृत क्यों—सौन्दर्य क्यों ऐसा विकृत होता है—मनुष्य के हृदय में ऐसा नैराश्य क्यों है—मनुष्य के भाग्य में ये सब शोक, दुःख क्यों है—प्रेम में विरह क्यों है—आशा में अविश्वास क्यों हैं—मनुष्य स्वार्थी क्यों है—क्यों दुःख को प्रकाश करने के शब्द भाषा में नहीं हैं—स्नेह में शंका क्यों है—जो जिसको चाहता है, वह उसे खोता क्यों है ? अगर खोता ही है तो जिस दिन खोता है—उसी दिन वह मर क्यों नहीं जाता ? यह संसारही क्यों है ? मिट्टी की देह के भीतर ऐसा सुख-दुःख-मय—स्नेह और प्रेम से भरा हुआ, ऐसा शान्ति-सौन्दर्य-प्रिय और पवित्रता का प्यारा हृदय क्यों है ? इसीसे तो कहता हूँ कि यदि कोई विधाता है तो वह बड़ा ही निर्दय है ! वह जीव की शुभ-कामना नहीं करता, जीव का मंगल उससे देखा नहीं जाता; वह दूसरे के दुःख को नहीं समझता, उसके पैरों पर सिर पटकने पर भी वह किसी की नहीं सुनता—वह ऐसा ही कठोर है। वह जबर्दस्ती शतरंज का खेल खिलाता है; मजा लूटने के लिये केवल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

किश्त पर किश्त देकर तंग करता है, 'मात' स्वीकार करने पर भी वह निरस्त नहीं होता—नहीं खेलूँगा—कहने पर भी जान नहीं छोड़ता। जाने किस तरह पक्की गोटियों को कच्ची कर फिर खिलाने लगता है। न जाने क्यों वह सात तुरुपों से खिलाता है। रंग का एक सत्ता लेकर खेला नहीं जा सकता—बीते हुए सुखों की केवल स्मृतियों को लेकर यह संसार का खेल अब खेल नहीं सकता। दुःखों के दिनों में; सब सुखों का यदि शेष हो गया हो, सुख की बातों का याद आना भी दुःखों को और बढ़ा देना है। इसीलिये कह रहा था कि इस जड़ संसार के हृदय में कोई हृदय नहीं है। क्या संसार में सुख नहीं है? यह कौन कहता है? सुख है इसी लिये तो कहता हूँ कि संसार का कोई हृदय नहीं है? संसार में यदि लगातार दुःख ही दुःख होता तो कहने को कोई बात ही न रहती? वह तो नहीं है—संसार सुख और दुःखमय है, इसी कारण कहता हूँ कि संसार का कोई हृदय नहीं है। इस संसार को आँसुओं से न रचकर, हँसी से न रचकर, आँसू और हँसी से रच रक्खा है, इसीलिये तो कहता हूँ कि इस संसार का हृदय नहीं है। कैसा भोला हूँ, सब भूल जाता हूँ, क्या कह रहा था—

वह मुखड़ा! सन्ध्या के वायु—हिलोरों से बासन्तीलता के भूलते हुए झालरों की भांति वह मुखड़ा—संसार की कुटिलता से अनभिज्ञ सोये हुए बच्चे के पवित्र होठों पर सुख-स्वप्नजात

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मुस्कुराहट की भांति वह मुखड़ा, न जाने काहे से भरा हुआ वह मुखड़ा—सदा ही मानों कुछ कहना चाहता हो, पर कहता न हो भाव-वाला वह मुखड़ा—अभी तो है, अभी नहीं है, आँखों के पलक मारते न मारते मिलने और खोनेवाला वह मुखड़ा—जो कलेजे पर घर बनाये है, दिल में तस्वीर खींचे है, पर मुख पर नहीं आता है—वह मुखड़ा—हर समय याद आनेवाला वह मुखड़ा—जिसे छूकर छूआ नहीं जाता—वह मुखड़ा—हाय विधाता ! किस विधाता ने उस जन्मातरीण सुखस्वप्न से भरे हुए मुखड़े को बनाया था ? किस तरह बनाया ? हृदय की बात को कहने में असमर्थ क्यों हो रहा हूँ ? कलेजे में जो चुभ रहा है वह कहा क्यों नहीं जाता ? दिल की बातों को सुनाने के लिये कोई दिलदार क्यों नहीं मिलता ? किसको कहूँगा ? कौन सुनेगा ? कौन इस व्यथा की कथा को घड़ी दो घड़ी ठहर कर सुनेगा ? मनुष्य क्या मेरी व्यथा को समझ सकेगा ? इसीलिये तो पहले ही कह रहा था कि दिल में एक दर्द रह गया ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

15259

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

द्वितीय पुष्पांजलि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भागीरथी के तीर पर—

कल कल कल कल—यह कैसी ध्वनि है माता ? इस ध्वनि को सुनकर मेरा हृदय न जाने कैसा हो जाता है, इसीसे तो पूछ रहा हूँ—यह कैसी ध्वनि है—यह कैसी बात है ? क्या इसका कुछ अर्थ भी है ? तो फिर मेरी छाती में न जाने क्या काँपने क्यों लगता है ? हृदय के गूढ़, गूढ़तम प्रदेश में न जाने क्या हिल हिल कर उछलता क्यों है, उछलते उछलते हिलता क्यों है ? हृदय-यन्त्र की छिन्न तंत्रियाँ घरर घरर क्यों करने लगती हैं ?—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बहुत दिनों के भूले हुए सुखस्वप्न अचानक जाग क्यों जाते हैं? देह के भीतर प्राण; पिञ्जरबद्ध विहंगम की भांति, न जाने—किस लिये तड़पने लगता है? हृतसर्वस्व, दीनहीन, न जाने—किस कारण—भिखारी—सन्तान को कह दो न माँ, ऐसा क्यों होता है?

कोई उत्तर नहीं;—केवल वही कल कल कल कल! परन्तु समझ गया—हाय मैं बलि जाऊँ! तुम्हारी इस बात का इतना अर्थ है मां? अवश्य है; हृदय में जिस कल कल शब्द का अनुभव करता हूँ वही कानों से सुनता हूँ इसलिये! अहर्निश जो नैराश्य-परिपूर्ण—कातर स्वर हृदय के चारों ओर सान्ध्य-समीरण की भांति हाहाकार मचाती है, दो घड़ी बैठ कर कानों को तृप्त कर लेता हूँ, इसलिये जो शब्द बदन पर चुभता है—छाती पर चढ़ बैठता है, खून पर दौड़ने लगता है;—शब्द बदन पर चुभता है—शब्द जो आँखोंसे दिखाई देता है; यह कैसी प्रहेलिका है? ओहो! हो! हँसी भी आती है—दुःख भी होता है—फिर वही कल कल ध्वनि!—वही बात है माता, इस सीधी बात को जो नहीं समझता, वह तुम्हारे इस कल कल का अर्थ, इस कल कल की महिमा को क्या समझेगा? परन्तु जो समझ लेता है, वह कुर्बान हो जाता है!

परन्तु यह कौन सी रागिनी है माँ? रूँधे हुए कण्ठ से तुम जो गाती हो—श्रांति नहीं, विराम नहीं,—तुम जो गाती हो—दिन रात तुम जो गाती हो—जब कोई नहीं सुनता है तब अपने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मनमें तुम जो गाती हो—वह कौन सी रागिनी है ? क्या यही दिव्य संगीत है ? स्वर्गीय गान क्या ऐसा ही होता है ? क्या ऐसा ही अमृत कानों में उड़ेल देता है ? ऐसी ही मोहमयी माधुरी से कलेजे को तृप्त कर देता है ? फिर माँ; एक बार स्वर्ग को देखूँगा। दिखाओगी माँ ? तू पतितपावनी है—अधम सन्तान को स्वर्ग में न ले जायगी ? बोल माँ—नहीं ले जायगी, क्यों माँ ?

फिर वही कल कल ! समझ गया—यही स्वर्ग है—अवश्य है, किन्तु मुझे उसका कुछ सुख तो नहीं दिया न ? नहीं—यही तो स्वर्ग है—मानता हूँ, इससे अधिक स्वर्ग में है ही क्या ? सिर के ऊपर वह चन्द्रमा, सामने स्वयं तुम—निशा-सुन्दरी की यह सुखभरी मुस्कुराहट, तुम्हारे जल में तारकाओं का यह नृत्य, तुम्हारे तीरस्थ लताओं की यह झालर और वायु का यह खेल—वृक्ष के पत्तों के साथ वायु का यह खेल, उस लता का तुम्हारे उस ध्वनि की भांति फूलों का वायु के साथ यह खेल—इससे अधिक स्वर्ग में होगा ही क्या ?

कल कल कल कल—तो माता—मैं क्यों आता हूँ ? क्यों इस गम्भीर निशा में तुम्हारे तीर पर रोने आता हूँ ? क्यों आता हूँ सुनोगी माँ ? सिवा तुम्हारे, दुःख की कहानी और कोई सुनना नहीं जानता। एक ही बात को सौ बार सुनना कोई जानता नहीं। मनुष्य अपने शोक के बोझ से ही मरे जा रहे हैं, इसीलिये

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दूसरे की वेदना की गाथा को कोई सुनना नहीं चाहता। मनुष्य के पास मर्म की व्यथा को प्रकाश करना दुर्बलता समझी जाती है—लोग उस पर हँसते हैं, माँ; तुम्हारे तीर संचारी वायु के साथ अपनी गहरी उछ्वास को मिलाने आता हूँ। एक की व्यथा को दूसरा नहीं समझता, इसीलिये तुम्हारे जल के साथ इन अश्रुजल को मिलाने आता हूँ।

और माँ, यहाँ पर मेरी एक चीज खो गई है। वह जो सैकत ज्योत्स्नाशैय्या पर निद्रित है, वहाँ पर मेरा एक सर्वार्थसार रत्न खो गया है। छाती के भीतर छाती बिछा कर छाती से ढक कर एक रत्न रख छोड़ा था; वह वहाँ पर गिर गया। उसी को ढूँढ़ने आता हूँ, परन्तु मिलता नहीं है, फिर भी ढूँढ़ने आता हूँ—मेरा अबोध मन, मेरा पागल प्राण मानता नहीं है। कितना समझाता हूँ पर वह नहीं समझता। कितना दर्शन विज्ञान कितना काव्य और अलंकार खोलकर पढ़ना चाहता हूँ—मन को व्यापृत रखने के लिये; पर अबाध्य मन मुँह को उस ओर से फेर लेता है। तब वही पुरानी प्रेमलिपियों को पढ़ने लगता हूँ, परन्तु आँखों में आँसू डबडबानें लगते हैं, अक्षर दिखाई नहीं देते। आँसू को पोछ कर फिर पढ़ना चाहता हूँ। फिर आँसू आँखों में भर आते हैं—पढ़कर तृप्ति नहीं होती। उन लिपियों को जिसने लिखा था, उसे अच्छी तरह पढ़ना लिखना नहीं आता था—कहीं भी रचना का चातुर्य नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

था—भावों का पारिपाट्य नहीं था, शब्द-विन्यास का कौशल नहीं था—परन्तु जो था वह किसी में भी कभी नहीं देखा, जिन बातों से लोग मुग्ध हो सकते हैं, उनमें ऐसी कुछ भी बातें नहीं हैं—जिससे लोग विरक्त हो जायें, ऐसी कई बातें हैं—फिर भी समग्र संस्कृत साहित्य का कवित्व, उसके एक पंक्ति की बराबरी नहीं कर सकता। उन लिपियों के प्रति पंक्ति में, प्रत्येक शब्द में, प्रत्येक अक्षर में, प्रत्येक मात्रा में, प्रत्येक वर्णच्युति में, प्रत्येक व्याकरण शुद्धि में, प्रत्येक भ्रम में, और प्रत्येक मसि-विन्दु में जो कवित्व है, 'बिहारी-सतसई' में वह नहीं है, भूषण ग्रन्थावली में वह नहीं है, अभिज्ञान शकुन्तल में वह नहीं है, मेघनाद-वध में वह नहीं है, पदकल्पतरु में वह नहीं हैं, उत्तररामचरित में वह नहीं है, हेमलेट में वह नहीं है, ओथेलो में वह नहीं है, इलियाद में वह नहीं है, इनियाद में वह नहीं है, कुमारसम्भव में वह नहीं है—वह स्याफों के संगीत में भी नहीं है, भैरवी रागिणी में भी नहीं है, बसन्त के पवन में भी नहीं है,—वह अतुल है। पढ़ते पढ़ते मन में इस सैकत की याद आ जाती है—मन उदास हो जाता है। मानों एक बाँसुरी की मीठी आवाज घर के बाहर खींच लाती है। दौड़ कर यहाँ चला आता हूँ। आकर जल को खोजता हूँ, स्थल को खोजता हूँ—परन्तु केवल खोजता ही हूँ—जिसे खोजता हूँ, उसका पता नहीं लगता—फिर गालों पर हाथ रखकर रोने लगता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रोना क्या दुर्बलता का चिह्न है ? फिर माँ तुम क्यों कल कल करती हुई रोया करती हो ! तुम तो देवी हो—तुमको सुख और दुःख से क्या नाता ? तब क्या माता इसलिये रोती हो कि, तुम मानव के अनन्त दुःख से दुखी हो ? यही कारण है; जो दूसरे के लिये रोना जानते हों, दूसरे की व्यथाओं से व्यथित हों, जो दूसरे की विपदाओं से कातर हों—वही तो देवता हैं। मनुष्य अपने लिये रोता है—देवता दूसरे के लिये रोते हैं; मनुष्य जिस दिन दूसरे के लिये रोना सीखता है; उसी दिन वह देवत्व को प्राप्त होता है। और हे माता ! जिसके निकट आत्मबलि की यह शिक्षा मिलती है; वह भी देवता है; जो परहित व्रत की शिक्षा देता है—वेही देवता हैं। ईसा ने जब कहा था; "दूसरे के निकट तुम जिस व्यवहार की प्रत्याशा करते हो; उसके प्रति भी तुम वही व्यवहार करो।"—उस समय लोगों ने समझा कि ईसा महाज्ञानी हैं। उसके बाद ईसा ने फिर जब कहा, "तुम शत्रु को भी प्यार करो"—उस समय लोगों ने समझा कि ईसा देवता हैं;—ऐसी महति उक्ति जिसके मुख से निकल सकती है—वह अवश्य ईश्वर-पुत्र है; वह अवश्य देवता है—वह मनुष्य का त्राणकर्त्ता है। ईसा के बहुत पहले शाक्यसिंह ने भी यही बात कही थी❀ इससे शाक्यसिंह बुद्धदेव

❀ M. Barthelemy Saint Hillaire following the example of Burnouf, Lassen and Wilson, fixes the year

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हो गये। कोम्त ने भी यही बात कही थी। कोम्त को यदि कोई देवता कहे तो मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं है। और माँ! तुम दिन रात रोती हुई इस सनातनधर्म का उपदेश दे रही हो;—इसी लिये तो तुम पतितपावनी, जगत्तारिणी, मृत्युंजय—शिरोविहारिणी हो। जो देवादि-देव हैं—जिनके अंगस्खलित चिताभस्मराशि के रज का मस्तक पर धारण कर देवता भी कृतार्थ हो जाते हैं, उनके सिर पर तुम शोभित रहती हो—कारण—तुम अहोरात्र दूसरे के लिये रोती हो। दूसरे के लिये रोती हो; इसी कारण तो तुम्हारे जल को स्पर्श करने से पाप क्षय होता है—तुम्हारे जल में अवगाहन करने से स्वर्ग प्राप्त होता है, तुम्हारे तीर पर मृत्यु होने से मुक्ति होती है, इन बातों पर जो सन्देह करता हो—वह मूर्ख है। उसमें बुद्धि नहीं, ज्ञान नहीं, सहानुभूति नहीं, पवित्रता नहीं,—वह पशु बराबर है। प्राचीन आर्यऋषियों में हृदय था, सर्वतत्वानुसंधायिनी बुद्धि थी, सर्वतत्वभेदिनी प्रतिभा थी, वे तुम्हारे कल कल का अर्थ समझते थे। इसी कारण पवित्र हिन्दू शास्त्र ने तुम्हारी महिमा का उच्चकीर्तन किया है। हममें बुद्धि नहीं है, वह लीलामयी कल्पना नहीं है, वैसी सर्वभेदिनी प्रतिभा नहीं है तुम्हारी महिमा को, तुम्हारे महात्म को हम नहीं समझते। दर्शन मात्र से ही जब स्वर्ग मिल जाता है तो

543 B. C. of Buddha's death; Max Muller places it in 477 B. C.
See Max Muller's chips from a German workshop.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तुम्हारे तीर पर मरने से स्वर्ग क्यों नहीं मिलेगा ? परन्तु—कैसा भोला हूँ, क्या कह रहा था—भूल ही गया:—

एक बार स्वर्ग को देखूँगा माँ !—सुख के लिये नहीं कहता, कारण हृदय की तारों पर जिसके नरक की अग्नि जल रही है, जिसके मन में सुख नहीं है,—उसको स्वर्ग में सुख कहाँ से मिलेगा—। नहीं स्वर्ग के सुख के लिये नहीं कहता, कहता हूँ केवल खोये हुए रत्न के अनुसन्धान के लिये। संसार को ढूंढ़ डाला, वह न मिली,—एक बार स्वर्ग को ढूँढूँगा—एक बार देखूँगा, वैसा फूल नन्दन कानन में भी खिलता है या नहीं। तुम्हारे जल में चन्द्ररश्मि के नृत्य की नाईं सुकुमार, निदाघसायान्ह—गगन-वत् कोमल, प्रणयिनी के प्रथम सप्रेम आलिंगन की भांति सुखमय, पर-दुःख-कातर मानव हृदय की भांति पवित्र, जो कली इस अधम के गृहकुंज में खिली थी—देखूँगा देवोद्यान में भी वैसी कली खिलती है या नहीं। जो सागर सेचित अमूल्य रत्न इस दरिद्र की कुटिया में था,—देखूँगा—वैसा रत्न देवराज के भवन में भी है या नहीं। अतृप्त हृदय से जो संगीत दिनरात सुना करता था, जो संगीत अब केवल निद्रालु चन्द्रालोक में दीख रहा है, जिस संगीत का अनुभव मैं इस स्वप्न से भरे हुए मृदु पवन में कर रहा हूँ,—सुनूँगा—वह संगीत अमरावती में भी गूंजता है या नहीं। एक दिन—हाय ! कहाँ है वह दिन ! ऐसा दिन था कि जब आँख उठाकर देखता तो वह संगीत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आँखों के आगे झलकने लगता था।❀ अब वह दिन न रहा; वह वीणा सदा के लिये नीरव हो गई, वह कण्ठ सदा के लिये निस्तब्ध हो गया—फिर भी उस संगीत की मूर्च्छना अभी कानों में भनक रही है—उस संगीत का लय अभी तक हृदय को छू रहा है। संगीत को देखा किस प्रकार जाता है ? मनुष्य सौन्दर्य में संगीत कैसा होता है ? हरे ! हरे ! व्यर्थ ही बकता रहा। मेरे दुःख को तुम समझ नहीं सकतीं ! मेरे इस जलते हुए दिल का पागलपन तुम-को अच्छा न लगेगा। मेरी बातों को भला कौन समझेगा ? अपने दिल के टुकड़े को तोड़ मरोड़ कर, अपनी जान की जान को बहा कर भी जो पत्थर सा कलेजे को बाँध कर जी रहा हो, उसके सिवा मेरे दुःख को और कौन समझ सकता है ? जिसका प्रणय केवल स्मृति को लेकर ही जीवित हो, उसको छोड़ कर मेरी बकवाद को और कौन समझेगा ? जिसका प्रेम, शावक-हीना विहंगी की भांति श्मशानभूमि के चारों ओर घूमता रहता हो, उसके सिवा मेरी इस व्यथा को और कौन समझ सकता है ? जिसका प्रणयदीप नैराश्य के निर्वात कन्दर में निर्वाण नहीं होता;—जिसका प्रणय नास्तिक के मन में भी परलोक के अस्तित्व का विश्वास जमा सकता हो—तर्क-युक्ति को पैरों से ठुकरा कर, शरीर से मन को अलग कर

❀ "The mind, the music breathing from her face."
—The Bride of Abydos.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सकता हो, उसको छोड़, मेरी बातों को दूसरा कौन समझ सकता है ? जो कवि न होते हुए भी, संसार के शोकताप से, बिरह की यंत्रणा से, निराशा की कातरता से, गतानुस्मरण के विष की ज्वाला से, कवि हो गया है—उसे छोड़, मेरे इस अर्थहीन प्रलाप का अर्थ दूसरा कौन लगा सकता है ? परन्तु—

हाय मैं बलि जाऊँ ! तुम कितनी शोभा फैला रही हो माँ—बलैया लूँ ! एक छोटा सा तरंग रूठ कर अभिमान से चला जा रहा है, उसको पकड़ कर लौटाने के लिये दूसरा तरंग उसके पीछे पीछे दौड़ रहा है—पीछे और भी असंख्य तरंग ठीक आवारे लोगों की तरह दल बाँध कर पीछे पीछे इस अभिमान का परिणाम, रहस्य जानने के लिये चले जा रहे हैं। प्रत्येक के सिर पर रत्न जल रहा है। चन्द्रदेव नारिसस की भांति अपने सौन्दर्य से आप ही मुग्ध होकर बार बार तुम्हारे जल में अपना मुख देख रहे हैं—और आप ही खुश होकर हँसते हँसते लोट पोट हो रहे हैं। वही तो सर्वनाश का मूल है माँ—वही तो मुझे रुलाता है माँ ! उसकी वह होंठभरी मुसकान और दिलभरी खुशी देखकर मुझे मर जाने की इच्छा होती है। उसको देखने से मेरे हृदय—न जाने क्या—न जाने क्यों—किस तरह करता रहता है। वह शशांक स्नेह—परिपूर्ण—निष्ठुरता के साथ, निष्ठुरतामय आदर के साथ, हृदय भर कर मानों अमृतमय गरल, गरलमय अमृत डाल देता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

है। बहुत दिनों की निर्वापित अग्नि फिर मानों धधकने लगती है। धधकता हुआ हृदय और भी अधिक धधकने लगता है, फिर भी शायद कुछ सुख का अनुभव भी करता हूँ। दुःख की प्रबल पीड़ा से जब प्राण त्राहिमाम् त्राहिमाम् करने लगता है, तब यदि ज़रा रो लिया जाय—न कोई देखेगा, न कोई सुनेगा—निर्जन में निर्भय होकर अगर जी भर कर रो लिया जाय तो जैसा सुख मिलता है—वैसा ही सुख का जरा अनुभव करता हूँ। गम्भीर दुःख के साथ जरा सा सुख—श्मशान में मानों फूलों की एक माला, चिरनिर्वासित के कानों में शैशवसंगीत, सुखावसान में सुख की स्मृति, चिर विरही को मानों प्रियतमा का प्रेमालाप—न जाने कैसा-जरा-सा सुख अनुभव करता हूँ। इसीलिये चन्द्रदेव ! तुमसे मैं इतना प्रेम करता हूँ। इतना अत्याचार तुम करते हो, इतना तुम रुलाते हो, इतना नाक में दम कर डालते हो, फिर भी केवल उस जरा से सुख के लिये मैं तुम्हें इतना प्यार करता हूँ। तुम्हारा वह कलंक अगर तुम मेट सको, तो फिर और भी अधिक प्यार करूँगा। तो, तुमको देखने से जो मन में आती हैं, उसकी एक मन को समझाने लायक उपमा मिल जायगी तो मैं प्रतिदिन इस निभृत स्थान में बैठकर सर्वदा तुमको देखता रहूँगा—जिसको कभी भी न देख पाऊँगा, उसको अन्तर के भीतर देखने के लिये सर्वदा तुमको देखता रहूँगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अच्छा तो मैं इतना रोता क्यों हूँ माँ ? क्यों रोऊँगा ? कौन सा ऐसा महापाप किया है, ऐसा कौन सा बड़ा भारी अपराध किया है कि मैं हमेशा रोता ही रहूँगा ? विधाता ने एक को सुन्दर बनाया था और मुझको सौन्दर्य का भिखारी बनाया था, क्यों माँ; इसलिये मुझे दिन रात रोना पड़ेगा ? मैं जिन चीजों को चाहता हूँ, जो मेरी आँखों में सुन्दर हैं, जिन्हें मैं प्यार करता हूँ, उन सबको विधाता ने मुझे एक साथ देकर भी मुझे अन्धा नहीं बनाया था; इसी कारण क्या माँ, श्रावण की वरषा की भांति निरन्तर झरता रहूँगा।❀ जो अच्छी थी, उसको प्यार किया था, क्या इसलिये मैं सदा रोता ही रहूँगा ? क्यों माँ ? यह ऐसा कौन सा अपराध है ? जिसने उस चाँद से मुखड़े को बनाया था—अपराध उसका है या मेरा ? इस ख़ाक दिल को जिसने बनाया था, अपराध उसका है या मेरा। एक के अपराध में दूसरे को दण्ड का भागी बनना क्यों पड़ता है ? जो अच्छा है—उसको प्यार करना क्या पाप है ? नहीं—ऐसा नहीं हो सकता। विधाता ! कौन सा मुख तुमको जीव—मंगल—व्रती कहता है ? काले साँप को इतना सुन्दर क्यों बनाया था ? सर्वनाश की आकृति को इतना मधुर क्यों बनाया था ?

❀ That thou were beautiful and I not blind.
Hath been sin which shuts me from mankind.
The Lament of To oss

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

क्यों माँ ? ज्ञानहीन अधम सन्तान को समझा दे माँ, संसार में इतना अविचार, इतनी निष्ठुरता क्यों है ? इसका एक मात्र उत्तर यह है—इस रचना का जो रचयिता है या तो वह जान बूझ कर दुःख देता है अथवा वह जो चाहता है,—उसे वह कर नहीं सकता। या तो वे निष्ठुर हैं अथवा अपूर्ण। उनको निष्ठुर न कहना चाहो, मत कहो; परन्तु इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि उनके ऊपर भी अवश्य ऐसी चीज भी कोई है; जिसके प्रभाव से उनकी सब इच्छा ही कार्य में परिणत नहीं हो सकती। वे प्रभूत शक्तिवान हैं, इसमें सन्देह नहीं ! परन्तु वे सर्वशक्तिमान नहीं हैं।❀

जो भी हो, इतना अवश्य समझता हूँ कि, संसार दुःखमय है ! यह जानता हूँ कि संसार के सम्बन्ध का फल दुःख है। इस संसार के साथ जिसकी संगति होती है, वह दुःखमय हो जाता है। सूर्य की प्रभा संसार में आते ही छायायुक्त हो जाती है। निशा-सुन्दरी की कबरी के भूषण, वे जो तारकायें हैं—वे कैसे स्निग्धोज्वल सौन्दर्य विशिष्ट हैं। परन्तु उनमें से एक भी अगर खिसक कर कहीं संसार में आ पड़ी तो लोग अमंगल की आशंका करने लगते हैं। इस संसार के साथ सम्बन्ध हो गया है, यही तो कारण है कि तुम्हें कल कल शब्द से रोना पड़ता है। हमलोगों को भी केवल इसीलिये रोना पड़ता है कि, संसार से हमारा सम्बन्ध हो गया है।

❀ See John Stuart Mill's Three Easays on Religicr.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रोदन करना ही संसार का नियम है, हँसना तो उसका व्यभिचार है।❀ जो शून्यचित्त है, वही हँसता है; जो अज्ञ है, वही हँसता है; जो कुछ नहीं समझता; वही हँसता है—कारण अज्ञता शान्ति-प्रद है। और जो चिंताशील है, वही दुःखी है; जो संसार को पहचानता है—वही रोता है। हम पैदा होते ही रोना आरम्भ करते हैं,—और उस दिन जो प्रस्रवन खुल जाता है, वह कभी भी शेष नहीं होता।—सोचता हूँ —मनुष्य क्यों जन्म ग्रहण करता है ? क्या कोई 'इस क्यों' का उत्तर नहीं दे सकता ? मैं समझता हूँ, शायद रोने के लिये ही मनुष्य का जन्म होता है।

तब माँ, रोदन करना क्या दौर्बल्य है ? मैं जो इतना रोता हूँ—क्या मैं दुर्बल हूँ? रोदन करना दौर्बल्य नहीं है किन्तु मैं दुर्बल अवश्य हूँ। दुर्योधन शत्रु था; फिर भी जब भीम ने उसके सिर पर लात मारी थी, तब युधिष्ठिर रोये थे—युधिष्ठिर धर्मपुत्र थे। ईसा मनुष्यजाति के दुःख से दुःखी होकर रोये थे—ईसा ईश्वर-पुत्र थे ! श्रीरामचन्द्रजी रावण के लिये रोये थे, वे विष्णु के अवतार थे। शाक्यसिंह मानव जाति के दुःख को निवारण करने के लिये सब कुछ त्याग कर—राज्य छोड़कर माता पिता छोड़कर, प्रणयिनी स्त्री छोड़ सन्यासी हो गये थे। शाक्यसिंह बुद्धदेव थे। संसार

❀ "Happiness is an occassional episode in human drama of life"—Thomas hardy—अनुवादक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

के करीब तृतीयांश लोग उनके उपासक हैं,❀ इसीलिये कहता हूँ रोना दुर्बलता नहीं है। जो कभी रोया नहीं है, वह नीच है। तब मैं रोता हूँ तो दुर्बल कैसे हुआ? उनके रोने और मेरे रोने में अन्तर क्या है? अन्तर बहुत है। वे दूसरे के लिये रोये थे, इसीलिये वे महान थे; और मैं रोता हूँ अपने लिये, इस कारण मैं क्षुद्र हूँ, दुर्बल हूँ। मेरे रोदन में स्वार्थ भरा है, इसलिये रोना जानकर भी मैं दुर्बल हूँ मेरे सुखों का अवसान हो गया इसलिये मैं रोता हूँ, यही कारण है, मैं दुर्बल हूँ; मेरा प्रणय स्वार्थ से भरा है, इस लिये मैं दुर्बल हूँ। वह चली गई; संसार—यह शोकताप पूर्ण संसार—यह हाहाकारमय संसार वह छोड़कर चली गई; वह बच गई—सदा के लिये शान्ति के उत्संग में स्वप्नविहीन निद्राभिभूत हो गई है—वह बच गई है, उसकी अस्थियों को शान्ति-वायु का स्पर्श मिल गया है! जहाँ वह गई है, वहाँ अत्याचार नहीं है, आफत नहीं है, दुःख नहीं विच्छेद नहीं है; वहाँ सब ही अच्छा है; सब ही सुन्दर है; सब ही पवित्र है, फिर मैं रोता क्यों हूँ? मेरा स्नेह

❀ Berghans, in his physical Atlas, gives the following division of the human race according to religion:—

Budhist— 31·2 per cent	Brahmanists—15·4 per cent
Christians—30·7 „ „	Heathens—8·7 „ „
Mohamedans—15·7 „ „	Jews— 9·3 „ „

Vide Max Mular's Chip's from a German Workshop.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यदि विशुद्ध होता, यदि मैं अपने को भूल कर प्रेम कर सकता होता, तो उसकी मृत्यु से अगर—सुखी नहीं तो दुःखी भी नहीं होता। वैसा न हो सका—उसका दृष्टान्त दिन रात आँखों के सामने देखते हुए भी, अपने को भूल न सका, इसलिये मैं साधारण हूँ। मैं इस दुर्बलता को परिहार करना तो चाहता हूँ, पर माँ कहाँ, मैं समर्थ नहीं होता। सोचता हूँ कि अपने लिये अब न रोऊँगा, परन्तु अभागा मन नहीं मानता माँ! सोचता हूँ, मनुष्यजाति को हृदय में स्थान दूँगा मनुष्यजाति के लिये, पशुपक्षी कीट पतंगों के लिये अपने को भूल जाऊँगा——मगर उतनी प्रशास्तचित्तता तो मुझमें नहीं है माँ!

कल कल कल कल—तुम यह गीत गा रही हो। वायु न जाने तुम्हारे तीर पर क्या कहता फिर रहा है। तीरस्थ वृक्ष भी शाखाहस्त को हिलाते हुए झूम झूम कर क्या कह रहा है। तद-वलम्बिनी लतायें भी रह रह कर हिल रही हैं। सब को ही क्या भाषा होती है माता? अवश्य होती है। हममें वह सर्वभेदनी प्रतिभा नहीं है इसलिये हम समझ नहीं सकते। परन्तु मैं आज समझ रहा हूँ तुम्हारे सलिल शीकर वाही——समीरण के स्पर्श से मैंने दिव्य-कर्ण—पाया है। तुम्हारे तीर पर सैकतासन पर बैठ कर मैंने दिव्य ज्ञान प्राप्त किया है, इसीलिये मैं स्थावर जंगम की भाषा समझने लगा हूँ। लता कह रही है—देखो, अनन्त नील विस्तृत के भीतर वह सुन्दर चन्द्रमा, पुण्य सलिला यह जाह्नवी, दक्षिण मारुत का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यह हिल्लोल—मैं सुखी हूँ,—इसलिये हिल रही हूँ; कारण, जो सुखी है, वही चंचल है, वही अस्थिर है। वायु कह रही है—देखो, क्या तो राजोद्यान में, क्या तो दुर्गम अरण्य में, जहाँ कहीं जो कोई भी फूल खिलता है, उसका सौरभ मैं तुम्हारे लिये ढोया करता हूँ—मेरा उसमें कुछ लाभ नहीं है, फिर भी दूसरे का बोझा ढोता फिरता हूँ,—जो मेरे पास से लेने नहीं आता—मैं उसके घर पर जाकर पहुँचा आता हूँ—अतएव निस्वार्थ परहित व्रत ही परम धर्म्म है। वृक्ष कह रहा है—देखो, जो मुझे छेदन करने आता है, उसको भी मैं छायादान करता हूँ—अतएव शत्रु को स्नेह करना ही महत्व है। जो मित्र हैं, उन्हें कौन नहीं चाहता ? और माँ, तुम कह रही हो—देखो मैं देवी हूँ; मेरा अपना कुछ सुख व दुःख नहीं है—केवल तुम्हारे लिये रोती हूँ, कारण मैं तुम्हें प्यार करती हूँ—और जो प्यार करता है वह अवश्य रोता है। परन्तु मेरे रोदन का भी एक परिणाम है। मैं स्नेह को लुटाते लुटाते जाकर आखिर अनन्त सागर में मिल जाती हूँ; उस समय भी मैं वही रहती हूँ; तुम्हारे लिये मेरे पास जो अपार स्नेह है, वह अक्षुण्य रहता है, केवल स्नेहजनित यह रोदन नहीं रहता—केवल कल कल ध्वनि नहीं रहती—अतएव स्नेह को अनन्त विस्तृत के साथ मिला देना ही पुरुषार्थ है। समग्र मानवजाति को स्नेह करना ही स्नेह का प्राकृत सुख है, कारण इस प्रणय में विरह नहीं है—एक के चले

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जाने के बाद यदि इस शून्य सिंहासन पर दूसरे को स्थान दूँ, तो वह भी जा सकता है, परन्तु मनुष्यजाति तो कभी लुप्त नहीं हो सकती। व्यक्ति विशेष की मृत्यु हो सकती है; परन्तु सारी मनुष्य-जाति की मृत्यु एक साथ नहीं हो सकती और अगर कभी वह लुप्त हो भी जाय तो मैं देखने के लिये जीता न रहूँगा, इसीलिये कह रहा था कि इस प्रेम में विरह नहीं है। मैंने केवल एक को प्यार किया था, इसीलिये मैं दुःखी हूँ। यदि समग्र मानवजाति को, अथवा समग्र भारतवर्ष को, और नहीं तो कम से कम केवल अपने प्रान्त भर को ही हृदय में स्थान दे सकता होता--तो इतना रोना नहीं पड़ता। स्नेहजनित सुख रहता, पर स्नेहजनित दुःख न होता। समझा नहीं, तुम पतितपावनी तो हो, अधम-तारिणी तो हो, तुम्हारे स्पर्श से पवित्रता प्राप्त होती है, तुम्हारे तीर पर रहने से मुक्ति होती है। जो धर्म की शिक्षा प्राप्त करना चाहता है, उसे उचित है कि तुम्हारे निकट आये; जो सुख का भिखारी है, उसे भी उचित है कि तुम्हारे पास आये। तुम सर्व-सुख प्रदायिनी, सर्वार्थ साधिका हो--तो मुझे एक भिक्षा दो माँ! यदि फिर कभी मनुष्य जन्म हो, तो तुम्हारे तीर पर ही मैं पैदा होऊँ--दूसरी जगह पर राजचक्रवर्ती होने की अपेक्षा तुम्हारे तीर पर कीटानुकीट होना भी उत्तम है। अच्छा तो आज यहीं श्री चरणों में प्रणाम कर विदा माँगता हूँ माँ--बड़ी नींद आ रही है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तृतीय पुष्पांजलि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हृदय का व्यापार—

यदि हृदय का एक व्यापार किया जाय तो कैसा हो ? सब चीजें का व्यापार किया जा सकता है, तो क्या हृदय का व्यापार नहीं किया जा सकता ? कभी व्यापार वाणिज्य न सीखा—यह पापी जीवन पवित्र कैसे होगा ? आजकल बहुतों का कहना है कि बिना व्यापार किये भारत का उद्धार नहीं होगा। भारतीयों की उन्नति क्यों नहीं होगी ? प्राचीन भारत बड़ा कैसे हुआ था ? कहने का अर्थ यह नहीं है कि प्राचीन भारत में व्यापार बिलकुल न था—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

था, लेकिन कम। प्राचीन रोम ने कैसे उन्नति की थी? मुसलमान कैसे बढ़े? बात यह नहीं है; किसी एक विषय पर प्रधान लक्ष्य रहना ही काफी है--मतलब यह नहीं है कि केवल मेरा तुम्हारा लक्ष्य रहने से ही होगा; नहीं—जातीय लक्ष्य रहना चाहिये। उसमें अगर हम तुम न भी रहें तो नुकसान नहीं। जो बात व्यापार में है, इसमें भी वही है। व्यापार का अर्थ कहीं यह तो है ही नहीं कि सब ही व्यापार करें। भारत बड़ा हुआ था, ज्ञान और धर्म को प्रधान लक्ष्य बना कर। परन्तु इसलिये प्राचीन भारत कुछ मूर्ख और अधार्मिक न था। परन्तु अगर बड़ा ही हुआ तो और अधिक बड़ा क्यों नहीं हुआ। उज्वल प्रभात पर उज्वलतर मध्याह्न दिखाई क्यों न दिया? प्रातःसूर्य प्रातःकाल में ही अस्तमित क्यों हो गया? जाति भेद के कारण। ज्ञान को ब्राह्मणों ने केवल अपनी ही सम्पत्ति बना ली--जातीय लक्ष्य नहीं बनाया। ब्राह्मण बढ़ गये--भारत का अधःपतन हो गया। जब तक सम्प्रदाय उठ नहीं जाते, जब तक समग्र भारत-संतान एक सम्प्रदाययुक्त नहीं हो जाते, तब तक भारत का भला नहीं हो सकता। रोम बड़ा हुआ था, आधिपत्य को लक्ष्य बना कर। मुसलमान बढ़े थे, धर्म प्रचार को लक्ष्य बना कर। कार्थेज बढ़ा था, अंग्रेज बढ़े हैं, रुपयों को लक्ष्य बना कर। भारत में जो कुछ भी देखते हो सब में दर्शनशास्त्र और धर्म भाव दिखाई देगा। प्रत्येक हिन्दूनारी, मृत्यु के बाद आत्मा की अवस्था

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

का पारम्पर्य की समालोचना करने में समर्थ है। हर एक हिन्दू को घर से बाहर जाने के लिये मुहूर्त देखना पड़ता है, घर की लक्ष्मी को घर लाने के लिये समय और दिन देखना पड़ता है, भोजन करने के पहले देवता की आराधना करनी होती है, चाहे पत्र ही लिखे, चाहे दूकान की वही; लिखने के पहले वह अपने आराध्य-देवता का नाम लिखता है; शयन करने के पूर्व ईश्वर का नाम लेता है, शय्या छोड़ कर उठने के पहले ईश्वर का नाम लेकर उठता है। देवता के नाम से वह सन्तान का नामकरण करता है; गौरीदान के फल के लिये अपनी शिशुकन्या को अयथा विवाह की डोर से बाँध देता है। रोम में जो कुछ भी देखोगे, उसी में तलवार और खून नजर आयेगा। हम अंग्रेज के शिष्य हैं, इसलिये धन को लक्ष्य बनाकर ही बढ़ना चाहते हैं, धन को ही जीवन का सार और सर्वस्व समझना चाहते हैं। क्यों—क्या और दूसरे कोई लक्ष्य से काम नहीं चल सकता? अगर कहो—अब वह दिन नहीं रहे।—यदि कहो, अंग्रेज व्यापारी हैं, वे बड़े हैं; हम व्यापारी नहीं हैं, हम छोटे हैं।—किन्तु व्यापार में इतने बढ़े चढ़े होने पर भी अंग्रेज सर्वप्रधान नहीं है।—बात यह है कि जिस राष्ट्र की जिस ओर स्वाभाविक प्रबलता है, वह राष्ट्र उसी में उन्नति प्राप्त करता है। हममें राष्ट्रीय एकाग्रता नहीं है—एकाग्रता तो दूर की बात है—हममें वह राष्ट्रीय जीवन ही नहीं है, इसीलिये हम छोटे हैं—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हम बड़े होते हुए भी छोटे हो गये हैं। हमारे लिये प्रयोजन इस बात का है कि हम राष्ट्रीय-जीवन का संस्थापन करें। पहले राष्ट्रीय-जीवन तो हो, उन्नति अपने आप होगी। सिर ही नहीं है तो सिरदर्द कहाँ से हो। जीवन ही नहीं है—उन्नति। इसीलिये कहता हूँ—सम्पादक भाइयों! हे देशनेताओं! उन्नति की बात अभी रहने दो—राष्ट्रीय-जीवन को संस्थापित करने के लिये डट कर खड़े हो जाओ। हाँ अगर तुम कहो, जातीय जीवन के अभाव से उन्नति नहीं होती तो अंग्रेज शाशनाधिकार में हमने इतनी उन्नति कैसे की? मैं यह नहीं कहता हूँ कि उन्नति बिलकुल हो ही नहीं सकती। कहने का अर्थ यह है कि जिसे प्रकृत उन्नति कही जा सकती हो वह नहीं हो सकती। अंग्रेजों के शाशनाधिकार में कुछ उन्नति अवश्य हुई है, परन्तु वह उन्नति ऐसी है कि अधिक अग्रसर नहीं हो सकती। और जो उन्नति हुई भी है उसका कारण हमारी अपनी प्रतिभा है। इतने थोड़े समय के अन्दर कौन सी विजित जाति विदेशीय दर्शन-विज्ञान-साहित्य में इतना जानकारी पा सका है? आज हम शेक्सपियर के कवित्व को समझने लगे हैं—किन्तु कितने संस्कृतज्ञ अंग्रेज ऐसे हैं, जो 'कुमारसम्भव' के कवित्व को, अथवा उत्तर रामचरित के गूढ़ अर्थ को समझ सके? केवल बुद्धि से उन्नति हो सकती होती तो हम सर्वप्रधान नहीं तो कम से कम एक प्रधान राष्ट्र में गिने जाते। इसीलिये कहता हूँ, पहले

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

राष्ट्रीयत्व की संस्थापना करो। परन्तु फिर वही भोलापन—जो कह रहा था, वह भूल ही गया—

यदि हृदय का एक व्यापार किया जाय तो कैसा हो ? चौक में एक कमरा किराये पर लेकर दिल की दूकान खोली जाय तो कैसा हो ?

परन्तु व्यापार चलेगा नहीं। यह चीज बैठकर बेचने की नहीं है। इसके ग्राहक अपने आप नहीं आ सकते। भिखमंगे तो चाहे बहुत मिल जायँ, परन्तु ग्राहक नहीं मिल सकते। चीज तो अच्छी है,—न मिलने के कारण कितने ही रोते फिरते हैं—मिलने से लोग कृतार्थ हो जाते हैं, पाकर खो जाने से हाय हाय मचाते हैं—जीवन अन्धकार हो जाता है, संसार सूना मालूम होता है, संसार का वैचित्र्य ही मिट जाता है; तारे प्रभाहीन नजर आते हैं, सुन्दर का सौन्दर्य धुल जाता है, कलेजे में आग सी जलती है, जिसमें दिल धधकता रहता है—जी उदास हो जाता है, इच्छा मर जाने की होती है। चीज तो अच्छी है, परन्तु अपने आप कोई खरीदने नहीं आता। हाथ जोड़ कर आँसुओं से अभिषेक कर फिर देना पड़ता है, नहीं तो कोई लेना नहीं चाहता। जो हृदय का व्यापार करता हो, वह धोखेबाज नहीं है—इसका प्रमाण क्या ? जो चीज ढूँढ़े से नहीं मिलती है, उसकी अगर कोई दूकान खोले तो उसका विश्वास कौन करे ! इसी कारण तो कह रहा था, दूकान चलेगी नहीं। चीज तो अच्छी है, मगर इस कलुषित संसार में अच्छी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चीज की कदर कोई नहीं करता है। फूल सूख जाता है, सौन्दर्य विकृत हो जाता है, प्रेम टूट जाता है, रमणी रोती है—अच्छी चीज की कदर कौन करता है ? स्त्रियों के लिये जो नियम है, पुरुषों के लिये भी वही नियम है—जिस आग में हमारा हाथ जल जाता है, उसी आग में उनका हाथ भी जल जाता है। हम जल मरें, उसमें नुकसान नहीं, परन्तु वे क्यों जलेंगी ?—वही तो कहता हूँ, अच्छी चीज का आदर नहीं है ? सूर्यकिरण में रोग जननता है, मित्रत्व में कलह है, प्रणय में विरह है—स्नेह में सीमा—वद्धता है—वायु के हिलोरों में संक्रामकता है, रमणी—कण्ठ—में कठोर वाणी है, रमणी की आंखों में आंसू है, रमणी के हृदय में दुःख है—फिर कहो तो भला—अच्छी चीजों की कदर कहां होती है ? चंदन का फूल नहीं होता, किंशुक में सौरभ नहीं है, इक्षु में फल नहीं होता, संगीत की दर्शनोपयोगिता नहीं है, सुख में शांति नहीं है, शांति में सुख नहीं है—कौन सी अच्छी चीज बिलकुल अच्छी है ? जो पद्मवन दर्शकों को आनन्द देता है, वही पद्मवन तैरनेवाले की मृत्यु है; जो सभ्यता अंग्रेजों का गौरव वही सभ्यता हमारे सर्वनाश का हेतु है; जो चिन्ताशक्ति तुमको सुख देती है, वही चिन्ताशक्ति मेरे लिये काल है; जो चन्द्रमा तुमको आनन्द देता है वही चन्द्रमा मुझे रुलाता है; जो प्रेम तुम्हें स्वर्गसुख देता है, वही प्रेम मुझे नरक—यंत्रणा देता है—कौन सी अच्छी चीज बिलकुल अच्छी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

है ? परन्तु—वह देखो पुकार रही है—"फूल लेओ फूल"। अच्छा उसकी तरह, यदि हृदय के बोझ को सिर पर लाद कर, पथ पथ पर; गली गली में, घर घर पर यदि आवाज देता हुआ घूमूँ तो कैसा हो ? नहीं आवाज देने से नहीं होगा—"क्या तुम कोई हृदय लोगे जी ? जो लेता है, वह रोता है; जो न लेता है, वह रोता है; जो देता है, वह पागल हो जाता है; जो न देता है, वह व्यक्ति अच्छा नहीं;—तुम कोई इस अधम का हृदय लोगे जी !" नहीं । ऐसी बातें सुनकर फिर कौन लेने को आयेगा ? अच्छा तो कहूँगा—"चीज बहुत अच्छी है; पास रहने से कार्य में उत्साह मिलता है, धर्म में मति होती है, संसार पर अनुराग आता है, आशा पर विश्वास होता है, केवल रात को निद्रा नहीं आती है,—क्या कोई हृदय लोगे जी ?" फिर भी नहीं हुआ । एक नुक्स रह ही गया । नहीं यह नुक्स नहीं है, यह जागरण एक सुख का जागरण है, यह बात मैं तो समझो मान भी गया, परन्तु सब उसे क्यों मानने लगे ? अच्छा तो उस बात को छोड़कर कहूँगा—"चीज निराली है; जो बेचता है, वह परलोक में मुक्ति प्राप्त करता है; जो खरीदता है, उसका यौवन लौट आता है; वह संसार को सुन्दर देखता है; उसके होठों की हँसी लौट आती है आँखों के आंसू सूख जाते हैं, वह शरीर से ही स्वर्गसुख का उपभोग करता है—क्या तुम कोई मेरा हृदय लोगे जी ?" अच्छी बात है । परन्तु आवाज देते देते गला रुंध

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जाता है, फिर भी कोई लेना नहीं चाहता। दूसरे के हृदय को लेने से अपना हृदय भी जाता रहता है—अपना हृदय न खोने से दूसरे का हृदय मिलना कठिन है। अपना चला जायगा, इस डर से कोई दूसरे का लेना नहीं चाहता। किन्तु तोड़ कर बेचने से बहुत ग्राहक मिलते हैं, परन्तु पूरा हृदय कोई लेना नहीं चाहता, हृदय के सुख को ही लोग चाहते हैं, हृदय के दुःख को कोई लेना नहीं चाहता; मन का आनन्द लेना चाहता है, हृदय के अवसाद को लेना नहीं चाहता—सुख के सुखी तो बहुत मिलते हैं, दुःख के दुःखी नहीं मिलते। बस यही तो दुःख है—दिल की बात को कहने के लिये कोई दिलदार नहीं मिलता।

दुःख को एक ही जन ले सकता है, केवल एक जन लेना चाहता है। परन्तु अगर वही रहा, तो फिर दुःख काहे का? धन न रहे, ऐश्वर्य न रहे, मित्र न रहें—सहाय न रहे, गृह न रहे, खड़े रहने का स्थान न रहे—परन्तु अगर वही रहा तो दुःख ही काहे का? रोग शोक रहे, दुःख-यंत्रणा रहे, सहस्र व्यथायें रहें—अगर वह रहे, तो दुःख ही काहे का? क्षुधा की तीव्र ताड़ना रहे, प्यास से अगर छाती फट जाय, संसार के अभावों से अगर हृदय चकनाचूर हो जाय—फिर भी उसका मुख अगर देख लिया तो दुःख काहे का? वह नहीं है यही तो दुःख है; नहीं तो हृदय का व्यापार किस लिये करूँगा? अभी खुशामदें करके देना चाहता हूँ, कोई लेना नहीं—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चाहता; "लेलो, लेलो" कह कर हाथ-पैर पकड़ता हूँ, कोई लेता नहीं है ? वह सदा इस लिये डरा करती थी कि कहीं खो न जाय। अधिकारस्वत्त्व का नवीन स्वीकृत-चिह्न पाकर वह अपने को भूल जाती थी। मैं भी उसका गद्गद् भाव देखकर अपने को भूल जाता था—न जाने वह कैसा ही एक भाव था। सोचता था कि कलेजे को चीर कर कलेजे में से हाथ निकाल कर दस हाथों से उसको कलेजे में भर कर दाब लूँ। ओह ! मानों मैं पिघल जाता था, कुछ ऐसा ही भाव था। वह भाव भूल गया। बहुत दिनों से अभ्यास नहीं रहा—भूल गया—बहुत दिनों से देखा नहीं, परिचय नहीं मिला—भूलता जा रहा हूँ। सब है,—हँसी है, रोदन है, स्नेह है, प्रेम है, आशा है, अनुराग है—न रहने से मनुष्य जीयेगा कैसे ?—कम हो, या अधिक हो, सब है—केवल वह पिघल जाने वाला भाव नहीं है—। बड़ा मधुर भाव था। याद आते ही अब भी कैसा मानों हो जाता हूँ, परन्तु वैसा नहीं होता—। उसको बाहर की आँखों से देख कर, फिर कलेजे में आँखें तय्यार कर—उन आंखों से देख कर मैं जैसा हो जाता था, अब वैसा नहीं होता। अब एक ठिकाना रहता है, उस समय क्या करता था, न करता था, कुछ ठिकाना ही न रहता था। उस भाव के लिये, उस पिघल जाने वाले भाव के लिये, इस समय हृदय को हाथ में लेकर दरवाजे दरवाजे सिर पीटता फिरता हूँ, निहोरे करता हूँ; मगर फिर भी कोई नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लेता। वैसा कोई नहीं मिलता। इस संसार रत्नाकर में अनेक रत्न हैं, परन्तु वैसा नहीं है। इस अनन्त विश्व में अनेक चन्द्र हैं, परन्तु इस क्षुद्र संसार में केवल एक ही है। जुपिटर में ४, युरिनस में ६ सेटरन में ८ परन्तु इस पापलोक में केवल एक ही है! हमारे पास हृदय भी तो एक ही है न? केवल एक बार ही अपने से दूसरा बढ़ जाता है। केवल एक जन की तुलना में अखिल संसार तुच्छ मालूम होता है। दूसरे को यत्न किया जा सकता है, श्रद्धा की जा सकती है, आदर किया जा सकता है, सुश्रुषा की जा सकती है— परन्तु प्रेम केवल वही एक से! किसी के साथ प्रथम प्रेम ही हमारा अन्तिम प्रेम होता है। जिस मूर्ति को दिनभर में सहस्र वार देखने से भी आँखें तृप्त नहीं होतीं, जो मूर्ति चिरकाल आँखों से सटी रहती है, जो मूर्ति एक बार हृदय में अंकित की जाती है—वह सदा के लिये हृदय से लगी रहती है।—समय के श्रोत में सब बह जाता है—रूप, यौवन, प्रफुल्लता, सुख, आशा सब बह जाती हैं, परन्तु हृदय का दाग नहीं मिटता, हृत्पिंड को छेदने पर भी वह दाग नहीं मिटता। वैसा कोई दूसरा नहीं हो सकता। जो जाता है, वैसा कोई नहीं होता। उसके बाद नया प्रबन्ध करना केवल बेगार करना है। परन्तु हां—क्या कह रहा था, भूल ही गया:—

हृदय का व्यापार करूँगा। परन्तु इस वस्तु को बेचने के लिये कितना मूल्य लिया जायगा? कौन सा मूल्य पाने पर मैं दे सकता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हूँ ? रूप ? रूप से क्या होता है ? जो चंचल है, वह और भी अधिक चंचल होता है; जो पागल है, उसका पागलपन बढ़ जाता है; जो निर्बोध है, उसकी बुद्धि जाती रहती है। मैं रूप को लेकर क्या करूँगा ? रूप कितने दिन रहेगा ? नवदूर्वादलावलंबी-नीहार-विन्दु की भांति, वृष्टि-संयातोद्भूत-जलबिंब की भांति, व्यापारी के धन की भांति, सैनिक के सिर की भांति, प्रणयी के सुख की भांति, पतनशील नक्षत्र की भांति, मनुष्य के जीवन की भांति, मेरे मानस-पट में उस मुखड़े की भांति, अभी है, अभी नहीं है—रूप की दरकार नहीं—रूप को लेकर मैं क्या करूँगा ?

तो शान्ति ! फिर इस दूकान की आवश्यकता ही क्या ? जाह्नवी के गर्भ में शयन करने से ही तो शान्ति मिल सकती है—लोगों की खुशामद क्यों ? जाह्नवी—सैकत—में सदा के लिये सो जाने पर जो शान्ति मिल सकती है, वह शान्ति और कहां मिलेगी ? किन्तु सुख ! बुरा क्या है ?—फिर वही हो ।

कल्पना की सहायता से मकान के बाहर हुआ। आवाज दी—"कोई हृदय लोगे जी ?" एक बार-दो बार-तीन बार—किन्तु किसी ने न बुलाया। एक गृह के अभ्यंतर से नैशगगन को विदीर्ण कर आनन्दध्वनि उठ रही थी। सोचा शायद यहीं इस हृदय का एक किनारा कर सकूं। गृह में प्रवेश किया। आवाज दी—"कोई हृदय लोगे जी ?" एक स्त्री बाहर आकर पूछने लगी—"क्या दाम है ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मैंने उत्तर दिया--"सुख"

रमणी मुस्कुराकर कहने लगी,-"सुख? भला सुख कौन किसको दे सकता है? सुख अपने अपने अधिकार का है। हमारे सहवास को लोग सुख कहते हैं। बात ठीक है; परन्तु इस उपमा के प्रकृत-सौन्दर्य को लोग नहीं समझते! स्वर्ग में सुख भोग होता है, परन्तु अपना अपना सुख सबको साथ ले जाना पड़ता है।"

एक एक कर बहुत सी स्त्रियाँ जमा हो गईं। हृदय के व्यापार की बात सुनकर सब को कुछ कौतूहल हुआ। एक ने पूछा, "तुम्हारे पास कितने हृदय हैं?" मैंने उत्तर दिया, "सिर्फ एक ही।"

सुन्दरी ने कहा,—"एक ही चीज़ से कहीं व्यापार हो सकता है?" और एक स्त्री ने उठकर कहा, "कहां जरा बतलाओ तो सही देखूँ कैसा हृदय है?"

व्यस्त होकर मैंने हृदय खोल दिया। सुन्दरी ने देख कर कहा, "यह हृदय कौन लेगा? यह तो फटा हुआ है—इसमें न तो उत्साह है, न रस है, न तो खुशी है और न आशा; इस फटी पुरानी चीज़ को कौन लेगा? क्या कभी और किसी के पास भी इसे बेचा था?" मेरी छाती पर मानों सागर-मंथन होने लगा। सिर चकराने लगा। आंखों के आगे अंधेरा छा गया। विदीर्ण हृदय और शुष्क कण्ठ से मैंने उत्तर दिया, "नहीं बेचा नहीं था।—मैं सौगंध खा कर कह सकता हूँ कि मैंने बेचा नहीं था। एक ने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

छीन अवश्य लिया था। मेरे अज्ञात में ही एक ने सेंध काट कर इसे चुरा लिया था। एक दिन—जब शरत् का चन्द्र आकाश पर हँस रहा था,—एक दिन शेषरात्रि में अकस्मात नींद खुल गई; एक निद्रिता बालिका का मुख बड़ा सुन्दर मालूम हुआ। शेष-निशा में मृदु पवन के साथ ज्योत्स्ना का श्रोत उस मुख पर पड़ रहा था,—बड़ी सुन्दर मालूम हो रही थी। मेरी नींद खुल तो गई थी, मगर आँखों पर नींद लगी हुई थी। लकड़ी का पुतला सा होकर मैं उस मुखड़े को देखने लगा—छाती में नवीन सुख का तरंग था। चिन्ताश्रोत नवीन पथ बना कर दौड़ने लगा! बार बार उस मुखड़े को देखने लगा।—कैसा सुन्दर मालूम हो रहा था। आकाश के चन्द्र को देखा—बड़ा सुन्दर मालूम हो रहा था। चारो ओर घूम कर देखा—संसार बड़ा सुन्दर मालूम हो रहा था। छाती के भीतर नजर दौड़ाई—सत्यानाश हो गया। मेरा हृदय चोरी चला गया। अनुसन्धान किया। चन्द्रदेव को पूछा—चन्द्रदेव हँसने लगे। वृत्त-लता को पूछा,—उसने सिर हिलाया। कुसुम-कलियों से पूछा—वे हँस कर एक दूसरे पर लोट पड़ीं। समीरण को पूछा,—वह 'हाय हाय' मचाने लगा। दूसरे दिन उस बालिका से पूछा,—बालिका मुख में कपड़ा भर, हँसी रोक कर भाग गई। समझ गया—वही चोर है, नहीं तो भागी क्यों?—सुन्दरी ने कहा—"चोर को ही यदि पहचान लिया तो अपनी चीज लौटाल क्यों न ली?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लौटाल लूँ ? हरे ! हरे ! किसके पास से लूँगा ? कौन मांगेगा ? उस मुखड़े की मधुर मुसकान को देख कर सोचा—निदारुण विधाता ! क्यों तुमने एक से अधिक हृदय न दिया ? वह एक तो गया ही—बाकी हृदयों को देकर दक्षिणा भी चुका देता। उस समय संसार को जानता न था। प्रेम करने से रोना पड़ता है—यह मालूम न था ? कौन जानता था कि यह नतीजा होगा। सुन्दरी को कहा, "उस मुखड़े को देखते ही सब भूल गया" रमणी ने कहा, "तो फिर व्यापार क्यों खोल रखा है ?" मैंने उत्तर दिया—"दुःख की बात क्या कहूँ,—वह अब नहीं है। काल समुद्र में दोनों एक दूसरे का मुँह देखकर तैर रहे थे;—वह डूब गई, फिर न उठी। सुना करता था—कि इस भव-समुद्र का एक तारणहार है—। उस दिन कातरभाव से व्याकुल होकर पुकारा—"अनाथ नाथ, हे भवसागर के तारणहार ! मेरी प्राणाधिका, मेरी जीवन निधि इस जल में डूब गई है—उठा दो दरिद्र के रत्न को ढूंढ़ दो।" कितना रोया, कितना चिल्लाया—किन्तु कुछ नहीं था, जो सुना था वह असत्य निकला, समझ गया इस भवसागर का कोई तारणहार नहीं है।" सुन्दरी ने कहा, "वह तो चली गई, क्या तुम्हारा हृदय तुम्हें वापस दे गई ?" मैंने कहा "नहीं वापस नहीं दे गई साथ भी नहीं ले गई—फेंक गई।" सुन्दरी हँसी, कहने लगी,—"तब तुम आदमी अच्छे नहीं हो ! वह जब तुम्हें दे नहीं गई तो फिर उस पर तुम्हारा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अधिकार ही क्या ? तुम उसे बेचोगे कैसे ? चितचोर को पहचान कर भी जब तुमने उससे न मांगा तो तुमने उसे दान ही कर दिया। जो देकर लौटा ले, वह महापापी है।" हृदय से एक दीर्घ श्वांस निकली; आंखों में आंसू आ गये, मैं रोने लगा। कुछ कहने को न था। ठीक ही तो है—आदमी अच्छा नहीं हूँ। दी हुई चीज को दूसरी बार देने का अधिकार कहां ? जो दे दिया—वह गया।—ठीक ही तो है—वह आदमी ठीक नहीं।

परन्तु मनुष्य चला जाता है। जो लेता है उसे लौटाल क्यों नहीं जाता ? उसको अभाव होता है परन्तु उस अभाव को अभाव क्यों नहीं होता ? चीज चली जाती है, उसकी स्मृति रह जाती है। स्मृति–स्मृति ! यही तो कांटा है। किन्तु खोई हुई चीजों की सूची ही याद है। एक एक चीज जाती है; और उसका नाम, और उसकी गुणावलियों का सुदीर्घ विवरण, उसके सुख प्रदायित्व का उग्र-चित्र इस सूची में—रह जाता है। ऐसा क्यों होता है ? जो जाता है उसका नाम तक क्यों नहीं मिट जाता ? पापी स्मृति क्यों है ? परन्तु स्मृति यदि न रहे तो उन्नति कैसे हो ? न हुई उन्नति, हर्ज क्या है ? समाज के उन्नति बन्धन से कौन कब सुखी हुआ है ? दो सौ वर्ष पहले के लोग क्या दुःखी थे ? उनके घर पर कुरसी मेज़ न थी, उन्होंने कभी हन्टिंग बूट नहीं पहना; वे जहाज और रेल पर नहीं चढ़े, तो क्या इसका अर्थ यह है कि वे दुःखी थे ! समाज की उन्नति ने क्या कभी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

किसी के आंसुओं को सुखा दिया है, क्या किसी के शून्य हृदय को भर दिया है! अभाव ही मनुष्य के सुख और दुःख का कारण है। जिसका सब अभाव पूर्ण नहीं होता वही दुःखी हैं, जिसका अधिकांश-अभाव पूर्ण नहीं होता वही अधिक दुःखी है, जिसका प्रधान अभाव अपूर्ण रहता है वह और भी अधिक दुःखी है। जो अप्राप्य हो, उसके लिये जो लालायित हो—उसके समान दुःखी संसार में और कोई नहीं है, अभाव का न रहना भी सुख नहीं है। अभाव रहे—और वे पूर्ण हों; वही सुख है। उन्नति से अभावों की वृद्धि होती है, सुतराम् सुख-दुःख की भी वृद्धि होती है। उन्नति से विलास की सामग्रियां बढ़ती जाती हैं। परन्तु क्या कह रहा था? हां क्या स्मृति न रहने से मनुष्य की उन्नति नहीं होती? क्या हानि थी? कलेजे की धधक भी तो नहीं रहती—नैराश्य-पवन जो आज जी को जला रहा है—यह भी तो न होता! दिल की हाय हाय तो मिट जाती। इस पिशाच स्मृति को होठों से जो खून की धार दिन रात बहती है। वही आंसू है..............हाय हाय! हृदय का कोई किनारा नहीं कर सका, हृदय का व्यापार न कर सका। जिस पर अपना कोई अधिकार नहीं, उसका व्यापार भला कैसे कर सकता हूँ। समझा मेरे दुःख—सागर का कहीं किनारा नहीं है। भग्नचित्त और भी भग्न हो गया। रोते रोते घर लौटा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चतुर्थ पुष्पांजलि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पूनों का चाँद—

सर सर करते हुए एकाग्र-चित्त से कहाँ जा रहे हो, जरा ठहर भी तो जाओ, एक बार अच्छी तरह तुम्हें देख तो लूँ। इस दुःख-मय मनुष्य-जीवन में अनन्त दुःख हैं; परन्तु मर्मान्तक दुःख यह है कि कुछ भी अच्छी तरह देखा नहीं जा सकता। जो कुछ देखा, जिसे देख कर मुग्ध हो गया, जिसे देख कर—पुनः देखने की लालसा बढ़ी—वह सब कुछ अच्छी तरह न देख पाया। फूल देखते-देखते सूख गये; क्षणप्रभा जैसे ही दिखाई दी नहीं कि विलीन हो गई;—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आँख भर कर कुछ देख न पाया। कुसुम का सौकुमार्य, विद्युत् की शोभा, इन्द्रधनुष का वैचित्र्य, सायाह्न गगन की कोमलता, बसन्त-पवन की माधुरी, चन्द्रकिरण की पवित्रता—जहाँ एक साथ देखा—वह सब साथ ही लुप्त;—जी भर कर देख न पाया कहाँ चली गई—

बस एक ही जलवे में हम हो गये सौदाई।
जी भर के न देखा—था होने लगी रुसवाई॥

एक बार ठहर जाओ—जरा देख लूँ। जरा विलम जाओ—आंखें तृप्त कर लूँ—जी भर देख लूँ। तुम्हें—बहुत प्यार करता हूँ। तुम सुन्दर हो—इसीलिये प्यार करता हूँ। तुम कोमल हो—इसीलिये प्यार करता हूँ। जैसी कालिमा तुम्हारे हृदय में पड़ी है, मेरा हृदय भी वैसा ही है—इसीलिये तुम्हें प्यार करता हूँ—और प्यार करता हूँ तुम्हारी उन प्यारी प्यारी मतवाली आँखों को—मीठी और माधुरी मुस्कुराहट को।

क्या केवल इतना ही? नहीं नहीं! शायद और भी कुछ है। उस प्यार के भीतर—केवल इस देखने भर प्यार के भीतर क्या कुछ और भी है? तुम आकाश के चाँद हो, हमारी पहुँच के बाहर हो—कभी छाती से लगा न सकूँगा—हृदय से लगाकर सौ बार, पलक ही में, सौ बार उस मुखड़े को देख नहीं सकूँगा। कहने को बात न हो फिर भी कुछ कहने की इच्छा से रात जगते नहीं बीतेगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कभी मेरे लिये कुछ अधिक मुस्कुराहट, मेरे आने की खुशी में कुछ आनन्द की प्रभा तुम्हारे उस मुखड़े पर कभी नहीं देखूँगा। कर्ण-विवर में कभी वह वचनामृत भी न डालोगे—केवल देखने भर का, आँखों का प्रेम—इसके भीतर कुछ और भी है क्या ?

तुमको देखने से स्मृति के घनांधकार में कुछ अस्पष्ट सा दिखाई देने लगता है; फिर पलक मारते न मारते विलीन हो जाता है। ढूँढ़ता हूँ—मिलता नहीं। जिधर देखता हूँ,—सब सूना मालूम होता है। वह—जिसे चाहता हूँ, वह मिलती नहीं। संसार में ढूँढ़ता हूँ—वह स्पर्शमणि केवल एक ही था। अन्तर में देखता हूँ—सब सूनसान हो रहा है—दिगन्त व्याप कर हृदयाकाश भर कर धूल उड़ रहा है। वह मानों न जाने क्या नहीं है। मरुभूमि नहीं, अरण्य नहीं, सागर नहीं, अकूल नदी नहीं, आकाश नहीं, जिसके साथ मनुष्य के दग्ध हृदय की उपमा दी जा सकती हो—वह नहीं—वही मानों न जाने क्या नहीं। मरुभूमि में वेसिस है, (Oasis उर्वराभूमि) सागर में द्वीप है, अरण्य में जीव है, प्रान्तर में सरसी है, नदी में जल है, आकाश में तारे हैं—हृदय में कुछ नहीं। इस नदी का तीर नहीं है, इस नदी में नाव नहीं है ! इसमें मछली नहीं तैरती, चन्द्र नहीं हँसता, तारे नहीं नाचते, प्रतिबिम्ब नहीं दीखता; इस नदी में जल नहीं, मृत्तिका नहीं, बालू नहीं, यह नदी सून्यमय है। इस आकाश में भानु नहीं, चन्द्र नहीं, नक्षत्र नहीं; यहाँ बादल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नहीं आते, बिजली नहीं चमकती, बज्र नहीं गरजता—यह आकाश आकाशमय है। इस मरुभूमि में सूर्य के किरण नहीं खेलते, वायु नहीं बहती, उत्ताप नहीं लगता, यह मरुभूमि मरुभूमिमय है। इस अरण्य में सरसी नहीं, वृक्ष नहीं, लता नहीं, तृण नहीं, पथ नहीं; इसमें बन के फूल खिलते नहीं, वन विहंगम गाते नहीं—यह अरण्य मानों कुछ नहीं है।—कहीं भी ढूंढ़े से नहीं मिलती। उसके बाद अनन्त दुःख से, अनन्त से मिल जाने के लिये, अनन्त आकाश की ओर जब देखता हूँ—तब तुमको देखकर फिर वही स्वप्नमयी प्रतिमा जाग उठती है। इसीलिये हे कलंकी चन्द्र! कलंक होते हुए भी तुमको इतना प्यार करता हूँ। हानि भले हो, लाभ नहीं, दुःख भले देते हो, सुख नहीं; रुलाते भले हो, हँसाते नहीं—हँसते भले ही हो, रोते नहीं—फिर भी तुमको इतना प्यार करता हूँ। केवल उस अतुल मुखड़े के साथ एक दूर का सम्बन्ध है इसलिये—नहीं तो तुम मेरे हो ही कौन?—मैं सुख नहीं चाहता—केवल शान्ति का भिक्षुक हूँ। कह सकते हो चन्द्रदेव, कहाँ जाने पर आँखों का आँसू सूख सकता है, जरा शान्ति मिल सकती है—ऐसा शान्तिनिकेतन कहाँ है? शायद उसको भूलने से कुछ शान्ति मिल सकती हो। तो क्या उसे भूल जाऊँ? भूलने की इच्छा होने पर ही क्या भूला जा सकता है? परन्तु अगर भूल भी सकूँ तो क्या भूलना चाहता हूँ? मानों कोई देवता प्रसन्न होकर वर देना चाहें तो क्या उसे भूल जाने का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वर माँगूँगा ? नहीं, तो क्या माँगूँगा ? माँगूँगा और क्या—उसी को माँगूँगा। अच्छा उस वर को छोड़कर और कोई वर देना चाहें तो ? क्या उसे भूलने का वर माँगूँगा ? नहीं—तो मरने का वर माँगूँगा। अच्छा अगर उस वर को भी न देना चाहें तो ?—मरने का ही वर माँगूंगा। अगर उसके बिना मरना चाहूँ, और वह वर न मिले तो फिर—फिर भी मरने का ही वर माँगूँगा। नहीं तो और माँगूंगा ही क्या ? उसको भूलने की बात मुँह पर ला नहीं सकता—तो और माँगूंगा क्या ? इतना रोता हूँ—इतना विलाप करता हूँ—हाय हाय मचाता हूँ, वह नहीं सुनती—आँसुओं को आकर पोछ नहीं देती—तो क्यों नहीं भूलूँगा ? क्यों अच्छा ही तो है। भूल जाऊँगा, फिर अन्धकार में दीपक जलेगा, इस आकाश में चन्द्रमा उदित होंगे, इस नदी में नक्षत्रों का किलोल होगा, इस मरुभूमि में फूल खिलेंगे, इस समुद्र में द्वीप तैरेंगे, अरण्य में पथ जगेगा, इस बादल में बिजली चमकेगी, जगत्कार्य में वैचित्र्य देखूंगा, मनुष्य मुख पर देवभाव देखूंगा, सब विश्वास करूँगा, उच्च हँसी हँसूँगा; फिर हृदययंत्र बजेगा, शून्य हृदय पूर्ण होगा, गृह में आकर्षण होगा, आँख के आँसू सूखेंगे,—क्या हर्ज है यदि भूल जाऊँ ! तो क्या भूल जाऊँ ? भूल जाऊँ ? नः असम्भव है। भूलना असम्भव है, मन नहीं मानता। हृदय नहीं समझता, क्या करूँ, लाचार हूँ। दिन रात उसको सोंचते सोंचते तन्मय हो गया हूँ। अब वह स्मृति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ही मेरा जीवन है—भूल जाऊँगा तो जीऊँगा क्या लेकर ? शून्य हृदय की अपेक्षा यह यन्त्रणा भी अच्छी है।

कहते ग्लानि होती है, परन्तु इतनी यन्त्रणाओं को सहते हुए भी उसी स्मृतिमूल के नीचे पड़ा रहता हूँ,—रोता हूँ, बिलखता हूँ, उस ज्वलन्त अनल को कलेजे पर रखता हूँ, उसमें मेरा कुछ स्वार्थ है। वह हृदय में रहती है तो हृदय खूब पवित्र रहता है। जिस गृह में वह अतिथि है, उस गृह में काठिन्य का स्थान नहीं रहता—उसके रहते कुछ ऐसा अनुभव होता कि मनुष्य के उपकार के लिये ही मनुष्य का जीवन बना है। हृदय जलता तो अवश्य है, परन्तु जलेगा नहीं तो अपवित्रता दूर कैसे होगी ? शोक दुःख न रहेगा तो सहृदयता कैसे आयेगी। बस यही स्वार्थ है—वह मेरे धर्म की डोर है। उसको मन से दूर करने से मेरे धर्म की डोर टूट जायगी। किसी स्त्री का मुख यदि हृदय में न रहे तो धर्म की गाँठ ढीली हो जाती है। दूसरी कोई स्त्री हृदय में स्थान नहीं कर सकती। स्त्रियों की बात आते ही, स्त्रियों की बात सोंचते ही—वह आकर सारे हृदय में छा जाती है। इसीलिये तो कहता हूँ उसको भूलने से धर्म के पथ पर स्थिर होकर—चल न सकूँगा।—आत्मबलिदान की बात केवल कोरी गपोड़संख हो जायगी। कागज में चाहे कितनी ही पर-हित व्रत की बातें लिखूँ,—परन्तु इस समय हृदय के पात पात पर यह बात जिस तरह अनुभव करता हूँ, वैसा फिर नहीं रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उस दिन उन, भोगस्पृहाशून्य संसार त्यागी योगी पुरुष ने कहा था—"स्त्री जाति को कालभुजंगी समझ कर उनके रास्ते से दूर ही रहना; यदि धर्म में मन हो, पुण्य संचय की अभिरुचि हो, स्वर्ग में जाने की अभिलाषा हो तो कभी रमणी का मुख न देखना।" मैं उनकी बात सुनकर मन ही मन खूब हँसा था। हा भगवन्! कहीं स्वर्ग में न जा सकूँ, इस भय से रमणी का मुख न देखूँ? रमणी का प्रणय—पवित्र मुख अगर न देखूँगा तो समझूँगा ही कैसे कि स्वर्ग क्या है? रमणी का मुख न देखूँगा तो जानूँगा कैसे कि पवित्रता क्या है, भक्ति—प्रीति क्या है, आत्मबलिदान क्या है? निस्वार्थ प्रेम क्या है। अगर उस मुखड़े को न देखूँगा तो जानूँगा कैसे कि नन्दन कानन में जो फूल खिले हैं वे फूल कैसे हैं—अप्सरायें जो गीत गाती हैं—वह संगीत कैसा है—देवता लोग जो हम पर स्नेह करते हैं, वह स्नेह कैसा है—अनन्त स्नेह, अनन्त प्रेम क्या है? इस पाप-संसार में रमणी का मुख छोड़, देखने लायक और है ही क्या? रमणी की कण्ठध्वनि को छोड़, सुनने लायक और है ही क्या?

यह क्या चन्द्रदेव! बादलों की ओट से अकस्मात निकल कर कहकहा मार कर हँसने क्यों लगे? क्या बात है? झूठी बात? सब आदर केवल दिखावटी है? दिखावटी तो है ही; नहीं तो अंतःपुरबद्धा दासीवत् क्यों बना रखते हैं? दासी को तो फिर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भी दासीत्व करने का समय है, असमय है, दासी को प्रभु-परिवर्तन करने की क्षमता है, दासी को बहुत कुछ स्वाधीनता है, परन्तु हृदय की जान, धर्म की डोर, गृह की शान्ति—उसके दासीत्व का समय नहीं, असमय नहीं, उसके दासीत्व में प्रभु-परिवर्तन नहीं, उसको कोई स्वाधीनता नहीं; वह जागते सोते दासी, उठते बैठते दासी, चलते फिरते दासी, हँसते रोते दासी, वह भक्ति श्रद्धा में दासी, वह हृदय-मन से दासी ! उसके दासीत्व का मोचन नहीं, मूल्य नहीं, कोई प्रशंसा नहीं। चाहे जितना जलाओ, जितना अपमान करो, जघन्य इन्द्रियलालसा की सामग्री बनाकर भी रख सकते हो। वे भी मनुष्य हैं—उनके ऊपर ये अत्याचार और आधिपत्य करने का अधिकार तुम्हें किसने दिया ? शरीर पर अत्याचार करना अधर्म है। इन्द्रियों पर अत्याचार करना और अधिक अधर्म है, पर हृदय पर अत्याचार करने की भांति अधर्म संसार में और है ही नहीं। तुम किस चीज पर अत्याचार नहीं करते ? तुम अपने लिये सहस्र बन्धन रखकर, उनके सर्वस्व को एक दुर्बल बन्धन में बाँध देते हो। तुम्हारा एक बन्धन टूट जाता है, एक सहस्र बन्धन रहता है; उनका एक मात्र बन्धन; अगर वह टूट गया, तो सब शेष हो गया। सब अर्थों का सार, उनकी यह दुर्दशा ! दिखावटी आदर नहीं तो क्या है ? उनको माता पिता से कुछ काम नहीं, मित्र-बन्धु से कुछ प्रयोजन नहीं—जो है बस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

स्वामी ही है। जिस दिन विवाह हुआ—उस दिन से उसके मन की सब नदियाँ स्वामीसागर में आकर गिरने लगीं;—स्वामी ही पिता, स्वामी ही भाई, स्वामी ही मित्र, स्वामी ही ज्ञान, स्वामी ही ध्यान, स्वामी ही सर्वस्व; स्वामी पादोदक पान करना उसका परम धर्म, स्वामी चरणों की सेवा ही उसका प्रधान कर्म, स्वामी मुखमण्डल उसके संसार-सागर की तरणी, स्वामी चर्णारविन्द उसके भव-सागर की भेला। तुम उसको लात मारो—हानि नहीं—वह अगर तुम्हारे प्रति जरा भी अप्रसन्न हुई तो नरक में जायगी! ये अत्याचार क्यों? दिखावटी आदर नहीं तो क्या है?

बात क्या है जानते हो; सब विषयों के दो पार्श्व हैं।—आलोक में छाया है, शोक से सहृदयता आती है। यह हुआ एक पार्श्व। जान स्टुआर्ट मिल ने भी केवल एक पार्श्व को दिखाया है। इसलिये उनके ग्रंथ❀ में असाधारण शक्ति का परिचय रहने पर भो, उससे सन्देह दूर नहीं होता। इसका एक दूसरा पार्श्व भी है। समाज-पद्धति के अनुसार वे दासी तो हैं, परन्तु हृदय पर हाथ रखकर कहो तो सही, वे हमारी दासी हैं या हम उनके दास हैं? सारांश यह है कि जहाँ प्रेम है वहाँ परस्पर का दासत्व भो है, परस्पर एक दूसरे के प्रभु हैं—

"श्याम के सर्वस्व तुम हो, श्याम तुम्हरे प्राण हैं।"

❀ Mill's Subjection of Women.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यही स्वामी और स्त्री का यथार्थ सम्बन्ध है। संसार की स्वाधीनता उन्हें क्यों नहीं देते ? हमने जिस कलेजे से उन्हें लगा रक्खा है उससे अच्छा संसार में और है ही क्या ? जिस मुखड़े पर पसीना देखकर हमारी आँखों के आगे अन्धकार छा जाता है, मुख जरा म्लान होने पर सिर पर आकाश टूट पड़ता है,—आँखों में आँसू देखने से छाती फटने लगती है—संसार की स्वाधीनता में क्या कहीं इससे अधिक सुख है ? इस स्वार्थी संसार में उस मुखड़े की ओर देखने वाला और कौन है ? मन में कोई अभिलाषा के आते न आते उसे पूर्ण करने के लिये कौन व्याकुल हो उठेगा ? गृह-सरोवर में, स्नेह-सलिल में, आदर-पवन में, सुहाग की हवा उड़ाकर, माधुर्य की ध्वजा फहरा कर जो प्रमोद—तरणी नाचती फिरती है,—वह क्षुद्र तरणी, संसार महासागर की उत्ताल—तरंगमाला संकुल अतुल जलराशि के ऊपर—शोक—ताप—दुःख—नैराश्य—प्रबल—वात्या संताड़ित होकर विलोड़ित होगी—क्या वही अच्छा होगा ? जिस चरण में कहीं काँटा विंध जाता है तो हमारे छाती में बज्र की चोट होती है, वह मूर्तिमती—सुकुमारता,—हिंसा और द्वेष से क्लिष्ट होगी, यंत्रणा से व्याकुल होगी—क्या ये भी कभी इन आँखों से देखी जा सकती है ? हम मर जायें कोई दुःख नहीं, हम संसार—दहन में दग्ध हो जायें, हानि नहीं,—केवल वे सुख से रहें। उनके सुख की सामग्रियों को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हम सिर पर ढो लायेंगे—हमारे रहते उनको दुःख क्यों सहना पड़ेगा ? इतना हैरान होते हैं—नाक में दम आ जाता है—पर कुछ भी याद नहीं रहता। केवल एकबार उस मुखड़े को देखते ही सब भूल जाते हैं। पाश्चात्य सभ्यता को नमस्कार करता हूँ, अमेरिकन दृष्टांत को साष्टांग दण्डवत करता हूँ; हम अपने हृदय की निधि को हृदय से ही लगाये रहेंगे। हृदय से लगाये रहेंगे—अगर वह हँसेगी तो हम हँसेंगे, अगर रोयेगी तो हम रोयेंगे—विनिमय में केवल उस मुखड़े को देखेंगे। जब रोग और शोक आकर व्याकुल कर देगा, तव उस मुखड़े को देखेंगे। जब कोमल आकाश में तुम उठकर आज की भांति ऐसा ही सौन्दर्य बरसा-ओगे, तब तुमको देखेंगे, एक बार उस मुखड़े को देखेंगे। संसार का कदर्य देखकर आँखों में जब शेल विद्ध होगा, तब उस मुखड़े को देखेंगे। जब परलोक की चिन्ता आकर उदय होगी, तब फिर उस मुखड़े को देखकर साहस बाँधेंगे। जब परदुःख से कातर होकर उन आँखों में मोती सी बूँदें चमकेंगी, उस समय उस मुखड़े को देखकर महत्व की शिक्षा लाभ करूँगा। जब स्नेहमयी, प्रीति-मयी होकर रोगी की रुग्नशय्या पर बैठकर अपने को भूल जायगी, तब फिर उस मुखड़े की ओर देखकर निस्वार्थ प्रेम का उपदेश प्राप्त करूँगा। इससे अधिक और कुछ नहीं चाहता। इससे अधिक और दूसरा कोई सुख है ही कहाँ ? ऐसे पवित्र निधि को जो विलास

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

की सामग्री समझता हो, वह अवश्य मूर्ख है,—नीच है, वह मनुष्य नाम का कलंक है। नराकार में पिशाच है।—परन्तु चन्द्रमा ! तुम्हारे पास जो कहने आया था वह भूल ही गया।

यही तो आफत है ! दिनरात विभोर कर रक्खा है। मेरा मन न जाने किस आनन्द से, न जाने किस दुःख से, किस अवसाद से चिन्तातरंगिणी—में तैर तो सकता नहीं, बहता चला जाता है। जानें कैसा चन्द्रमा हृदयाकाश में उदित होता है,—उसी ओर एकटक देखता हुआ हाथ पैर छोड़कर बहा जाता है। बहुत दूर जाकर जब देखता हूँ तो मालूम होता है खो रहा हूँ। मन के ऊपर स्वत्व—वह तो बहुत दिन हो गये चला गया; अधिकार जो है, वह भी शायद खो रहा हूँ। यही तो आफत है। चीज खो जाती है। आँख आँखों पर रखने पर भी खो जाती है। छाती पर रखने से भी खो जाती है।—फिर इस दुर्गम अरण्य में—इस गहरे समुद्र में चीज खो जाने पर ढूँढ़ना भी कठिन है। जब—इस संसार-प्रवास में आया था तो जननी प्रकृति ने कितनी ही चीजें साथ दे दी थीं।—सरलता, सहज प्रफुल्लता, स्थिति-स्थापकता, उत्साह, विश्वव्यापिनी आशा, लीलामयी कल्पना।—वे सब खो गई—एक एक कर सब खो गई ! सब जाता है—कुछ भी नहीं रहता—लौटते वक्त केवल प्रवास-यंत्रणा की कहानी भर रह जाती है। जगदीश ! तुम तो मानव के पिता हो न ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

परन्तु—सन्तान के लिये पिता का स्नेह—वह तुम्हारे पास कहाँ है ? संसार में इतना दुःख क्यों भर रखा है ? विरह—श्वास से मानव-हृदय का गठन क्यों किया है ? केवल रोने के लिये इस रंगभूमि में हमें क्यों भेजा है ? तुम दयामय हो, इच्छामय हो, सर्वशक्तिमान हो। दूसरे लोग क्या सोचते हैं, मैं नहीं जानता, पर मैं ऐसा विचार नहीं करता। दया—इच्छा—शक्ति, तब संसार में इतना दुःख क्यों है ? अगर वे दयामय होते तो अवश्य हमारे दुःखों को मोचन करने की इच्छा होती—नहीं तो फिर दया ही क्या ? दुःखी के दुःखमोचन की इच्छा ही दया है।

ईश्वर की इच्छा में कोई प्रतिबंधक नहीं रह सकता। इसलिये उनकी इच्छा अवश्य कार्य में परिणत होगी। ऐसा नहीं होता, मनुष्य का दुःख नहीं मिटता; जो जिसका भिखारी है, वह नहीं मिलता; इसीलिये कहता हूँ—वे ऐसी इच्छा नहीं करते अथवा उनमें कोई शक्ति नहीं। फिर वे कैसे दयामय हैं, कैसे इच्छामय हैं, कैसे सर्वशक्तिमान हैं। परंतु हाँ क्या कह रहा था, फिर भूल गया—

चीज खो जाती है। विलुप्त तो कुछ भी नहीं होता। ध्वंश तो कुछ भी नहीं होता। इस विश्व में आज जो उपस्थित है—वह सदा ही थी—केवल सम्बन्ध का विश्लेश है। सम्बन्ध छूट जाता है। हरे ! हरे ! सम्बन्ध क्यों छूट जाता है ?—अगर जाता है—तो सदा के लिये क्यों नहीं चला जाता ? फिर दूसरा सम्बन्ध क्यों होता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

है ? साथ साथ सब सम्बन्ध यदि छूट जाता तो अच्छा होता ।

पूनों के चाँद ! और एक दिन—अब वह दिन नहीं है,—कभी होगा भी नहीं—बहुत दिन हुए, एक दिन मुक्तवातायन के पथ से होकर इसी तरह हँसते हुए, इससे भी सहस्रगुण अधिक सौन्दर्य के साथ तुम इस गृह में आते थे, मेरे शरीर पर मेरे हृदय पर आ पड़ते थे। क्या और किसी पर भी पड़े थे ? तो उतना सुन्दर; शीतल, उतना प्रेममय क्यों मालूम हो रहे थे ? चाहे दुःख कितने ही हों, मैं अकेला न था। तुम्हारी हँसी कितनी मधुर है, इस बात को कहने वाली भी एक थी। तुमको देखते देखते जिसकी ओर देखकर मैं तुमको भूल जाता था, अब वह नहीं है। आज मैं अकेला हूँ। एक के अभाव से सब अन्धकार हो गया। वह दिन और आज ? कितना अन्तर हो गया। ईश्वर की दया की बलिहारी जाऊँ। कितने कोमल हृदय व्यथित हुए, कितने ही कुरंग-नयनों में आँसू भरे, कितने बिंबाधर सूख गये, कितने जीवन अन्धकार हो गये, कितने हृदय शून्य हो गये। कितने दीपक बुझ गये, कितने तारे अदृश्य हो गये, कितने चन्द्र—तुमसे भी सुन्दर कितने ही चन्द्र अस्तमित हो गये—फिर नहीं उठे। तुम चन्द्र हो—जाते हो, फिर आते हो। मेरे हृदयाकाश का चन्द्र जाता है, किन्तु फिर नहीं आता। ऐसे मधुर समय में एक बार आओ तो सही, प्राणाधिक् एक बार तो आओ ! इस मधुर ज्योत्स्ना पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

और भी अधिक ज्योत्स्ना लेकर आँखों के सामने एक बार खड़े तो हो जाओ। इस कलेजे को जरा ठण्ढा तो करो। इतने प्रेम का भी कभी विच्छेद होगा, यह मालूम न था। तुमको छोड़कर भी जीता रहूँगा, यह कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था। परन्तु चन्द्र-देव, बादलों को ओट में छिप क्यों गये ? देखो, मेरे हृदयाकाश में एक कराल जलद रेखा दीख रही है—कभी गरजती नहीं है, केवल अन्धकार कर रही है। आँखों के भीतर आग जल रही है,—एक बूँद आँसू नहीं रहा—मर जाने की इच्छा होती है। तुम्हारे शुभ्र रश्मि-तरंग में अगर डूब मरूँ तो कैसा हो ? बादलों में मुँह ढँक क्यों लिया ! क्या अब मुखड़े को न खोलोगे चन्द्रदेव ? तो अब बैठे बैठे क्या करूँ—जाऊँ।—तुम मेरे मन की बातें जानते हो—मैं फिर आऊँगा—इसी तरह छिपकर देख जाऊँगा। मेरे इस दुःखमय जीवन में इतना ही सुख है। ऐसे ही मृदु पवन में, ऐसे ही निर्जन में, ऐसी ही गम्भीर निशा में अकेला आकर तुम्हें देख जाऊँगा। अकेला ही आऊँगा। जिस दिन खूब सजोगे, खूब सुहाग फैलाओगे, उस दिन एक बार आकर उस सुन्दर मुखड़े को देखते हुए रो जाऊँगा। रोने में इतना सुख है—पहले मालूम न था। जो नहीं जानता, वह मजे में है ! मालूम नहीं कब यह हाय हाय मिटेगी। और नहीं जानता इस—

"जख्मे दिल की दवा क्या है ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पंचम पुष्पांजलि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

श्मशान में—

यहाँ पर सब सामान हैं। पंडित, मूर्ख; धनी, दरिद्र; सुन्दर, कुत्सित; महत्, क्षुद्र; ब्राह्मण शूद्र; अंग्रेज, हिन्दू; यहाँ पर सब समान हैं। नैसर्गिक, अनैसर्गिक सब वैषम्य यहाँ तिरोहित हो जाता है। शाक्यसिंह कहो, शंकराचार्य कहो, ईसा कहो, रूसो कहो; संसार में ऐसा साम्य और कहीं नहीं है। इस बाजार में सब चीज का एक ही भाव है—महाकवि कालिदास हों, चाहे कचौड़ीगली का लेखक हो—इस बाजार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

श्मशान में—

यहाँ पर सब सामान हैं। पंडित, मूर्ख; धनी, दरिद्र; सुन्दर, कुत्सित; महत्, क्षुद्र; ब्राह्मण शूद्र; अंग्रेज, हिन्दू; यहाँ पर सब समान हैं। नैसर्गिक, अनैसर्गिक सब वैषम्य यहाँ तिरोहित हो जाता है। शाक्यसिंह कहो, शंकराचार्य कहो, ईसा कहो, रुसो कहो; संसार में ऐसा साम्य और कहीं नहीं है। इस बाजार में सब चीज का एक ही भाव है—महाकवि कालिदास हों, चाहे कचौड़ीगली का लेखक हो—इस बाजार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में सब का एक दर है। इसीलिये यह स्थान धर्मभावपूर्ण, यह स्थान पवित्र है।

आज हो, कल हो, दस दिन बाद हो, सब आकर इसी श्मशानमृत्तिका में परिणत होंगे। जो अनभिभवनीय वीर्य, जो दुर्जय अहंकार—अब संसार में न रहने कारण रोते थे—वह इस श्मशान की मिट्टी में मिल गया है—तुम्हारी और मेरी गिनती क्या? जिस उत्कट आत्माभिमान ने यूरोपीय पंडित मण्डली के पास से कर माँगा था ❀ वह इस मिट्टी में विलीन हो गया। तुम्हारी और मेरी गिनती ही क्या है? उस दिन जिस चिन्ता-शक्ति ने ईश्वर को अक्षम कहने का साहस किया था; × वह भी इसी मिट्टी में मिल गई। जिस पवित्र सौकुमार्य ने इस पाप-हृदय में कालानल जलाया है, वह सुन्दरी, वह देवी, वह विलास-वती, वह अनिर्वचनीया, इसी मिट्टी में परिणत हो गई है, हमारी तुम्हारी कौन गिनती है?—यह संसार, यह जीवन कै दिन के लिये? इस नदी हृदय में जलबिंब की भांति जो हवा उठी है—शायद उसमें भी मिल जा सकता है। आज मान लिया कि अहंकार से किसी को पैरों तले कुचल भी दिया, परन्तु कल शायद वह दिन भी आ सकता है कि हमको सियार कुत्ते भी

❀ See Lewe's History of Philosophy, Auguste Gomti

× See J.S. Mill's Tree Essays on Reiigion.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कुचलेंगे। यह अहंकार क्यों ? इस अनन्त विश्व में, मैं कौन हूँ —मैं कितना सा हूँ—मैं क्या हूँ ? इस मिट्टी की पुतली को अहंकार नहीं फबता। इसीलिये कहता हूँ, इस स्थान के याद आते ही सब अहंकार—विद्या का अहंकार, प्रभुत्व का अहंकार धन का अहंकार; सौन्दर्य का अहंकार, क्षमता का अहंकार, अहंकार का अहंकार-सब अहंकार चूर्ण हो जाता है। और वह दिन अपरिहार्य है—भागने से रक्षा नहीं हो सकती। सुना है स्वर्ग में वैषम्य नहीं है—ईश्वर की आँखों में सब समान है। स्वर्ग क्या है, मैं नहीं जानता—कभी देखा भी नहीं है, न शायद कभी देखूंगा ही। परन्तु श्मशान भूमि का यह उपदेश ज्वलंत है। यह स्थान स्वर्ग से भी बड़ा है, पवित्र है।

जिधर देखो उधर ही अनन्त है—मैं अति क्षुद्र हूँ—अति सामान्य हूँ। इस सामान्य के लिये, इस क्षुद्रादपि क्षुद्र के लिये —इतना आयास, इतना यत्न; इतना विभ्राट, इतना पाप !—बड़ी लज्जा की बात है। इस क्षुद्र को केन्द्र कर जो जीवन अतिवाहित हुआ, उसका महत्व कहाँ है ? परन्तु तुम क्षुद्र होने पर भी मानव जाति क्षुद्र नहीं है। एक एक मनुष्य को लेकर ही मनुष्य जाति बनी है, परन्तु जाति मात्र ही महत् है। बिन्दु बिन्दु बारि से समुद्र की उत्पत्ति हुई है, कण कण वाष्प से ही मेघ बना है। रेणु रेणु बालू से मरुभूमि बनी है; क्षुद्र क्षुद्र नक्षत्रों से छायापथ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बना है; परमाणुओं से अनन्त विश्व बना है। एकता ही महत्व है—मनुष्यजाति महत् है। स्वीकार करता हूँ कि व्यक्तिमात्र की भांति जातिमात्र का भी ध्वंश है। ऐसा प्रमाण पाया जाता है कि—आज तक कितनी ही प्राचीन जातियाँ लुप्त हो गई हैं। कितनी ही नवीन जातियों का आविर्भाव हुआ है। हानि भी क्या है—जिस दिन मनुष्यजाति लुप्त हो जायगी, उस दिन मैं देखने के लिये न रहूँगा। परन्तु हाँ क्या कह रहा था, भूल ही गया—

यहाँ आने पर सब वस्तुओं की समाधि होती है। अच्छे; बुरे, सत् असत् सब इसी पथ से संसार छोड़ जाते हैं। यह सुख का अस्थान है। यहाँ पर शयन करने से शोक—ताप सब चला जाता है, सब दुख दूर हो जाते हैं—आध्यात्मिक, आधि-भौतिक, आधिदैविक, सब दुःख दूर हो जाते हैं। किन्तु यह भी कहूँगा कि, यह दुःख का स्थान है। यहाँ पर जो आग जलती है, वह फिर इस जीवन में नहीं बुझती। उसमें सौन्दर्य जल जाता है, प्रेम जल जाता है, सरलता जल जाती है,—जो जलने की चीज नहीं, वह भी जल जाती है—और साथ साथ दूसरे की भी आशा उत्साह, प्रफुल्लता, सुख, उच्चाभिलाषा, माया सब लुप्त हो जाती है। इसीलिये कहता हूँ, यह स्थान सुख का तो है ही, और दुःख का भी,—जो चला जाता है उसका सुख

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

और जो रह जाता है, उसका दुःख। इस संसार का यही नियम है—सब ही अच्छा है—और सब ही बुरा है। संसार में निर्दोष कुछ भी नहीं है—सब में अच्छे और बुरे का सम्मिश्रण है। इसी कारण प्रकृति को देख कर जहाँ तक समझता हूँ, उससे ज्ञात होता है कि इस परिदृश्यमान विश्व का जो आदि कारण है, वह भी अच्छे और बुरे से मिश्र है; अथवा दो शक्तियों से यह संसार समुत्पन्न है—उस शक्ति में एक तो अच्छा है, दूसरा बुरा; एक स्नेह है, दूसरी घृणा; एक अनुराग है, दूसरा विराग; एक आकर्षण है, दूसरा प्रतिक्षेप। ❀ परन्तु फिर देखो कहता क्या था और कहने क्या लगा,—

यह जो संसार है, यह एक महा श्मशान है! चिरवाहित कालश्रोत दिन दिन में, दण्ड दण्ड में, मुहूर्त मुहूर्त में, पलक पलक में, सब को बहाकर विस्मृतिगर्भ में डाल रही है अभी जो देखा, अभी वह नहीं है। सिर कूटने पर भी वह न लौटेगी। कहाँ जायगी कहाँ जाती है, वह तुमको जहाँ तक मालूम है, मुझे भी वहीं तक पता है, और तुम हम जो जानते हैं, उससे अधिक कोई भी नहीं जानता; सब ही चला जाता है, रहता कुछ नहीं है—हाँ रह जाती

❀ Attraction and resistance of matter. This theory originated with laplace; it has been exponded by Herbert Spencer.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

है केवल कीर्ति। कीर्ति अक्षय है। कालिदास चले गये, "शकुन्तला" रह गई। शेक्सपियर चले गये—"हेमलेट" रह गया; वाशिंगटन चले गये, अमेरिका की स्वाधीनता का झण्डा आज भी उड़ रहा है। रूसो चले गये, साम्य की दुन्दुभी आज भी संसार में गूंज रही है! कीर्ति रह जाती है, अकीर्ति भी रह जाती है। लार्ड नार्थ-ब्रुक चले गये, परन्तु लक्ष्मीबाई के आंसू नहीं सूखे। लोगों का अच्छा बुरा उनके साथ चला जाता है; कीर्ति और अकीर्ति संसार में विचरण करती रहती है।

यही संसार का सार तत्व धर्म की मूल वस्तु—पुण्य का स्वर्णसोपान है। परन्तु क्या कह रहा था—

यह संसार एक महा श्मशान है। जो चितानल इसमें धधक रहा है, उसमें न जलता है—ऐसी कोई चीज नहीं है। जड़प्रकृति किसी को नहीं मानती; जो सामने पड़ता है, उसे जलाकर, जलती जलती हँसती चली जाती है। वह जो नक्षत्रनिचय अल्पांधकार में चमक रहे हैं वे सब इस विश्वव्यापी महा वह्नि की ही स्फुलिंग हैं। इस संसार में अनल कहाँ नहीं है? निर्मल चँद्रिका में, प्रफुल्ल-मल्लिका में, कोकिल के रव में, कुसुम के सौरभ में, मृदुल पवन में, पक्षी के कुंजन में, रमणी की आंखों में, पुरुष की छाती में,—अनल कहाँ नहीं है? मनुष्य किससे नहीं जलता? प्यार करो जल जाओगे। प्यार न करो, फिर भी जलोगे। केवल मनुष्य क्यों,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

समग्र जीव जल रहे हैं। प्राकृतिक निर्वाचन में, यौवन निर्वाचन में, सामाजिक निर्वाचन में, जल रहे हैं। इस पाप—संसार में सहृद-यता नहीं, सहानुभूति नहीं, करुणा नहीं। ये अनन्त-जीव-समूह, इस महा वह्नि में नस नस से जल रहा है। जड़ प्रकृति केवल व्यंग करती है। शशधर के हँसते हुए मुखड़े पर क्या कभी विषाद का चिह्न देखा है? कल्लोलिनी के कल—निनाद में क्या कभी स्वर की विकृति देखी है? हमलोग जल रहे हैं,—परन्तु वह देखो, वृक्ष ताली बजाते हुए नाच रहे हैं।—वह सुनो, समीरण हँस रहा—है,—हो—हो—हो!

हाय! इस प्रकार और कितने दिन जलेंगे? कब तक इस यंत्रणा का अवसान होगा? क्या—कभी—तुमको अब न पाऊँगा? आज हो, कल हो, दस दिन बाद हो, जन्म जन्मान्तर में हो, क्या कभी भी तुमको न पाऊँगा? अगर तुम न भी मिलीं तो क्या कभी तुम्हें भूल भी न सकूंगा!

केवल एक विश्वास रह गया है। जिस दिन इस सैकत शय्या—पर—सो जाऊँगा, उस दिन शायद उसको भूल सकूं?—शायद यह आग बुझ जायेगी। ऐसा एक विश्वास है, इसी लिये कभी कभी मरने की इच्छा होती है। लेकिन बात यह भी है कि उसे भूल जाना होगा—उससे सम्बन्ध विच्छेद होगा, इस कारण मरने से असमर्थ हूँ! वह आंखों की ओट तो हो गई है, पर अन्तर में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

से नहीं गई। वह जहाँ है, वह स्थान पवित्र है—वह मन्दिर मैं जान बूझ कर क्यों तोड़ूं। वह जब मेरी चिन्ता का विषय है, वह जब मेरी एकमात्र चिन्ता है तो वह चिन्ता रहने दो। यंत्रणा तो होती है; परन्तु क्या करूँ? यदि उसके लिये यंत्रणाओं को न सह सका तो मेरे जीवन को धिक्कार है, इस छार प्रेम को धिक्कार है। इस प्रणय को धिक्कार है। जागतिक परिवर्तन पारम्पर्य से कदाचित वह मिट्टी और यह मिट्टी–मिल कर एक हो सकती है। दो देहों के विश्लिष्ट उपकरणों का पुनः समवाय हो कर शायद नई सत्ता हो सकती है! इसीलिये कहता हूँ परलोक में शायद वह और मैं मिल कर एक हो जाऊँगा! हरे! हरे! संसारांधकार का जो चन्द्रमा, जीवन का भी जो जीवन, भवसागर की जो तरणी, जीवन पंथ की जो पांथशाला, वह और मैं संसार का जो सार, स्वर्ग का जो नमूना, इह लोक का जो सर्वस्व, परलोक का जो ततोधिक, वह और मैं—गृह कुंज की वह सुखलता, चिन्तासरोवर की वह प्रफुल्ल—नलिनी, आशालता की वह संश्रयतरू वह और मैं,—संसार प्रवास की वह प्रिय—संगिनी, जीवन-मरुभूमि की वह शीतल श्रोतस्विनी, हृदय—कानन का वह विकल—कुसुम, वह और मैं—आशा का जो विश्वास, माया का जो मोह, प्रेम का जो कवित्व, दुःख की जो सान्त्वना, सुख की—वह—जो—है—वही, वह और मैं मिल जाऊँगा। वह मर कर मिट्टी हो गई है, मैं मर कर मिट्टी होऊँगा,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दो मिट्टी मिल कर एक हो जायेंगे। मेरे देह के परमाणु के साथ उसकी देह के मरमाणु से संघटन घटेगा; उसके और मेरे एक होने से एक नवीन सत्ता का अभ्युदय होगा। जो होगा, क्या सुख का वह संघटन होगा, कैसे सुख का वह मिलन होगा। मेरी वह आदरिणी, सुहाग की वह सुहागिनी, अतीत के कोमलाकाश का वह इन्द्र--धनुष, इस अन्धकार गगन की वह सौदामिनी—कैसा भरा पूरा वह मिलन होगा! कैसे सुख का वह समवाय होगा! जीव की देहांतर--प्राप्ति पर कौन मूर्ख विश्वास नहीं करता? आत्मा का शरीर—परंपरास्वस्थान असम्भव कैसे हुआ? आत्मा क्या है? शरीर यंत्र की गति। इसी कारण कहता हूँ शरीरस्थ प्रत्येक परमाणु ही आत्मा है। विश्लिष्ट देह—विशेष अणु के द्वारा देहांतर की सृष्टि होना कुछ विचित्र नहीं है। पियागोरास पूर्वजन्म में शायद एजाक्स रहे हों तो आश्चर्य क्या? राम के शरीर में शायद कालडेरान अथवा लोप डी भेगार, गेटे अथवा शीलार की, पाट्रार्क अथवा डांटे की, कर्नेली अथवा रेसाइन की, शेक्सपियर अथवा कालीदास की, होमर अथवा वर्जिल की, व्यास अथवा वाल्मीकि की आत्मा है। श्याम की देह शायद स्कालिगर अथवा मेग–लियावेकी की विश्लिष्ट देह के उपकरण से रचित है। यह जो हंस–पुच्छ लेखनी है, इसमें शायद भाल्टेयर अथवा रूसो हैं। इस मसीपात्र में शायद शाक्यसिंह या कोमत हैं। यह हृदय जिसके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लिये लालायित हो रहा है, हो सकता है इस हृदय में वही हो। मनुष्य देह का आणविक परिवर्तन प्रतिनियत संघटित हो रहा है। प्रत्येक व्यक्ति प्रति सातवें वर्ष में नया कलेवर धरता है। उस नियत-गामी परिवर्तन प्रवाह में बहते हुए, शायद उस देह का परमाणु इस देह में मिल रहा है। संसार में कुछ भी आश्चर्य नहीं है। संसार में सब कुछ आश्चर्य है। पुनर्जन्म असंभव नहीं है। उसमें—उस अमूल्य निधि में जो था, वह सब मौजूद है। कुछ भी पूर्ण रूप से विलुप्त नहीं होता। सब कुछ है—केवल एकत्र में नहीं है। वह सब उपकरण संसार में विराजमान है; जिस दिन उनका एकत्र संघटन घटेगा, उस दिन, याद आते ही हृदय नृत्य करने लगता है, प्राण रोमांचित हो आता है—उस दिन फिर संसार मरुभूमि में वह सुकुमार; वह मनोहर, वह सुन्दर फूल खिलेगा—चारो तरफ उज्वल कर, जगत से जगदांतर तक सौरभ का तरंग लुटा कर, विश्व के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक पवित्र श्रोत से धौत कर वह खिल उठेगा। पुनर्जन्म असम्भव नहीं है। जीव को देह परं-परा शक्ति असम्भव नहीं है।—हिन्दू धर्म में ऐसी कोई बात नहीं है, जो बिलकुल भ्रांत हो, ऐसा कोई मत नहीं है—जो हँस कर उड़ा देने लायक हो। जो चिन्ताशील है, वह सदा यही कहेगा; हिन्दू धर्म सर्वोत्‌कृष्ट है। यदि मानने लायक कोई धर्म्म है तो वह हिन्दू धर्म ही है। परन्तु फिर देखो क्या कह रहा था और क्या

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहने लगा—वह आ सकती है। जो गई है—संसार की माधुरी लेकर, हृदय की पात पात में आग लगा कर, सुख के पात्र में गरल उढ़ेल कर, अंतर और बाहर में निराशा की छाप लगा कर, जो भाग गई है; वह फिर लौट सकती है। परन्तु क्या मैं पागल हो गया?—कहाँ वह, कहाँ मैं? कहाँ वह प्रेम? कहाँ वह सुन्दर गृह? कहाँ वह चिर प्रेमोच्छ्वास परिप्लुत हृदय? हाय, मैं मरा क्यों नहीं? आँखों—में धूल झोंक कर वह जब भाग गई मैं क्यों उसके पीछे पीछे नहीं दौड़ा? जब मृत्यु की विकट छाया उस मुख पर पड़ी, तब क्यों मैंने विष नहीं खा लिया? वह जो चिता, नैशांधकार को दग्ध कर, भागीरथी सैकत को आलोकित कर जल उठी थी, मैं भी क्यों उसमें नहीं लोट गया? उस स्वर्णदेह की दग्धावशिष्ठ अस्थि को जब कलेजे को पत्थर से बांध कर मैंने बहा दिया, उस समय मैं भी क्यों पानी में कूद कर डूब नहीं मरा?

हृदय मथित हो गया। आँखों से अंधकार देखा। कातर स्वर से उद्भ्रांत होकर पुकारा, "प्राणाधिके, कहाँ हो तुम? मेरे अन्तर की ज्योति, मेरे बाहर के अन्तर, मेरी आँखों की मणि, मेरे जीवन सर्वस्व, मेरी तुम कहाँ हो? अपर पार से कठोर प्रतिध्वनि ने कठोर स्वर से मुख पर उत्तर दिया, "अब कहाँ है।" आकाश के उस कठोर स्वर ने नाचते हुए कहा "अब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहां है ?" दूर पर उस कठोर स्वर ने लीन होते हुए कहा— "अब कहां है ।" ❀ स्तम्भित हो गया। हाय ! किसने विधाता से इस मुँह जले प्रतिध्वनि की सृष्टि करने को कहा था ?

❀ Hark to the hurried question of despair.
Where is my child ?—an echo answer "where ?"
Byron—The bride of abydos.

I come to the place of my birth and cried "The friends of my youth, where are they ?"—and an echo ans wered, where are they ?—From an Arabic MS.—Byron's note on above couplet.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

षष्ठम पुष्पांजलि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नव-वसन्त के समागम में--

फिर वसन्त—आया है ! फूलों से सज कर स्वप्न के तरंगों को लेकर वसन्त आया है। परन्तु वह कहाँ है ?—पहले प्यार करता था, अब नहीं करता। इसीलिये वसन्त आया है। अगर प्यार रहता तो शायद नहीं आता। जिसको पहले प्यार करता था, और अब भी करता हूँ तथा हमेशा करता रहूँगा—वह तो कहाँ—आई नहीं। जिसको प्यार नहीं करता—वह भला क्यों नहीं आयेगा ?—जिसको प्यार नहीं करता वह तो आयेगा ही,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जिसको प्यार करता हूँ—वह क्यों आने लगी ? वृक्ष वृक्ष पर नव समागम हुआ, शाखाओं में नव प्रसून खिलने लगे, भौंरों का झुण्ड भी आ गया। नवीन श्यामशोभा से संसार भर गया, परन्तु—इस श्यामशोभा में वह श्यामशोभा—वह कहाँ आई ? आशा कहाँ आई ? वसंत का वह वसंत—वह कहाँ आया ? ऋतुराज फिर जलाने को आ गये ? कटे पर नमक छिड़कना, भला यह भी कोई वीरत्व है ? तोड़ना तो सब ही जानते हैं, मगर बात तो उसमें ही है जो बना भी सकता हो। कहानी में सुना था,—एक राजपुत्र बहते बहते मालिन के मालंच में आ लगा। द्वादश वर्ष तक जिस मालंच में फूल नहीं खिला था, वही मालंच अकस्मात फूलों के बोझ से झुक पड़ा ! ऋतुराज, नियति के श्रोत से बहते हुए आज इस मालंच में आ लगे हैं; परन्तु शुष्क तरु मंजरित कहाँ हुआ ? भौंरे गुंजारने कहाँ लगे ? सुहागिनी की व्रतती सौन्दर्य के भार से भारी होकर झूलने कहाँ लगी ? प्रति मृदुसमीरण हिल्लोल में सौरभ का तरंग प्रवाहित कहाँ हुआ ? जिसको पा कर मिलने से सुखी होता, वह लौटी कहाँ ? प्रकृति कई चीजों को लौटा सकती है किन्तु सब चीज नहीं। जड़ जगत की बहुत सी चीजें चली जाती हैं—फिर लौट भी आती हैं ? परन्तु अन्तर्जगत से जो कुछ जाता है—वह सदा के लिये चला जाता है—फिर कभी नहीं लौटता। वसन्त फिर आ गया किन्तु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वह चिरवसन्तमयी नहीं आई ! शिव ! शिव ! ज्योतिष्कनिचय, अनन्त विस्तृति–मध्यागत गगन विहारी मृतपिंड हो गये—स्वर्ग का आलोक, स्वर्ग की पवित्रता, स्वर्ग की शोभा पृथ्वी में लाने के लिये अब छिद्र नहीं मालूम होता। कोकल एक पक्षी हो गया—भ्रमणशील स्वर सा❀ अब मालूम नहीं होता। यह संसार यंत्रणा-कारागार हो गया है। हृदय के गूढ़तम प्रदेश तक आलोकित कर गृहकुञ्ज में फूल खिला ! सोचा, जीवन वसन्त का यह प्रथम पुष्प है। आशा थी कि और भी कितने ही खिलेंगे। निदारुण विधाता ने बतला दिया; यह अन्तिम पुष्प था। प्रेम के पुष्पोद्यान में केवल एक बार फूल खिलता है, मेरे साध के वसन्त में अकस्मात् शीतकाल आकर खड़ा हो गया। मेरा वह प्रिय पुष्प म्लान हो गया।—मतवाली कोकिल कलकण्ठ बजाते हुए उठी ही थी कि नीरव हो गई। आशालता टूट कर गिर पड़ी। मरुत् मृदुस्वर से रो रहा है; हाय ! हाय ! हाय ! यह मृदु-पवन, कितने ही दुःख

❀ O Cuckoo; shall I call thee bird,
Or but a wandering voice ?
Again;
" Even yet thou art to me
No bird, but an invisible thing—
A voice, a mystery."—Wordsworth.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

के तरंग, कितना नैराश्य, कितने ही विस्मृत स्वप्न-प्रवाह, कितने ही जन्मांतरीण अस्पष्ट भावों को लाकर दिल पर दबा देता है ! सहसा मानों कोई आकर श्वांस के पथ को ही रोक लेता है। एक एक साँस को कई बार लेना पड़ता है—हृदय पर सन्नाटा छा रहा है। नहीं, नहीं,—इस हृदय में कालानल, प्रलयानल, नरकानल, अनल का अनलत्व रचित अनल जल रहा है।—परन्तु प्रिये, ऐसा करना तो तुमको उचित न था ! उचित तो था कि; तुमको स्मरण करते ही आँखों के आगे ज्योत्स्ना खिले, कर्ण विवर में दिव्य संगीत का हिल्लोल प्रवेश हो, नासिका में पारिजात सौरभ आकर सुगन्ध दे, हृदय में अमृत की वर्षा हो ! दुःख भला क्यों न हो—क्यों नहीं यह जान चली जाती ? लालसा होती है कि मनुष्य देह को त्याग, पपीहा बनकर नील गगन के एक प्रान्त से लेकर दूसरे प्रान्त तक विरह-संगीत-ध्वनि से भर दूँ ! नहीं जानता किस पाप ने रावण की चिता को कलेजे पर जला रखा है ? क्या प्रेम पाप है ? प्रणय में दोष है ? नहीं ऐसा नहीं है। मनुष्य जीवन में जितने उद्देश्य हो सकते हैं, उनमें प्रणय ही सब से श्रेष्ठ है। पर-वर्ती काल की मनुष्य प्रकृति, पूर्ववर्ती काल की प्रणय घटना सापेक्ष है। मनुष्यजाति का शुभा-शुभ इस प्रणय पर ही निर्भर है। ❀

❀ "The final aim of all love intrigues, be they comic or tragic, is really of more importance than

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसीलिये कहता हूँ प्रणय धन्य है—प्रणय प्रणम्य है—प्रणय पूज्य है—प्रणय धर्म है, प्रणय में देवत्व है, प्रणय में ईश्वरत्व है। स्वार्थत्याग यदि देव भाव हो तो यह कह सकता हूँ कि प्रणय को छोड़ कर मैंने और कहीं देव भाव नहीं देखा; प्रणय को छोड़ कर मैं और कोई देवत्व स्वीकार नहीं करता। केवल यही नहीं; मनुष्य की अनेक महत् कीर्त्तियाँ प्रणय मूलक हैं। संगीतविद्या के मूल में भी प्रणय है; × भाषा के मूल में भी प्रणय ही है।❀ परन्तु

---

all other ends in human life. What it all turns upon is nothing less than the composition of the next generation. It is not the weal or woe of any individual, but that of the human race to come, which is here at stake."— "Schopenhaner".

× Mt. Darwin thinks that "Musical notes and rhythm were first acquired by the male or female progenitors of mankind for the sake of charming the opposite sex"

❀ This is also Darwin's opinion, he says:—We may believe that musical sounds afforded one of the bases for the development of the language.

Lord Monbodo in his 'Origin of language' says that Dr. Blacklock thought that the first language among men was music and that before our ideas were expressed by articulate sounds, they were communicated by tones, varied according to different degrees of gravity and acuteness.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हाँ क्या कहता था; किस लिये यह दारुण यन्त्रणा सहनी पड़ती है? हमारे पाप के लिये ईश्वर हमको उत्तरदायी नहीं कर सकते। हममें जो कुछ है, हमको छोड़ कर संसार में जो कुछ है; सब उन्हीं का बनाया हुआ है—इस हृदय को तुम्हीं ने बनाया है; हृदय से संसार का जो सम्बन्ध है, उसके तुम्हीं संस्थापक हो—तो हम पापी क्यों कर हुए? यदि पाप हो तो उसके लिये तुम दायी हो या हम? स्वीकार करता हूँ कि हममें बहुत कुछ पशु भाव है; परन्तु पशु अथवा पशुओं का इतना निकट कुटुम्ब हमको क्यों बनाया है?❀ खैर मरने दो। दुःखी की ओर कोई नहीं देखता। ऐसे ही तो मन के दुःख से मर रहा हूँ, उस पर आम्र-शाखा में बैठकर पंचम स्वर से कोकिल कह रहा है—कुहू-कुहू। न जाने क्यों यह कुहू-रव कानों के भीतर जा मर्मस्थल को पीड़ित कर रहा है।

❀ Without question, rhe mode of origin, and the early stages of the development of man, are identical with those of the animals immediately below him in the scale; without a doubt in these respects, he is far nearer to apes than the apes are to the dog" Huxlay's Man's place in Nature.

The leader, I presume, is already acquainted with Darwin.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वह कोकिल—उसके रव को सुन कर प्राण के भीतर भी मानों कोकिल बोलने लगता है। परन्तु केवल एक बार—बस उसके बाद नीरव हो जाता है। फिर बाहर तरुशाखा पर तीव्र पंचम स्वर से गगनमार्ग को प्रतिध्वनित करता हुआ कोकिल बोलता है। साथ ही हृदय के भीतर भी प्रतिध्वनि होती है—ऊहूः। फिर दूर बहुत दूर, छाती के भीतर—बहुत दूर प्रतिध्वनि कहती है —ऊः—ऊः—ऊः।

यह वसन्त का चाँद है—बलिहारी है ! यह इसके अलबेले भाव को मैं बहुत प्यार करता हूँ। शरद् की चन्द्रमा को लोग सुन्दर कहते हैं,—परन्तु उसकी हँसी बड़ी तीव्र है, व्यंग सूचक है—मर्मभेदी है। उतनी हँसी भी अच्छी नहीं लगती। और यह—इस अन्धकार ज्योत्स्ना, यह निद्रित ज्योत्स्ना, यह स्वप्न से भरी हुई ज्योत्स्ना,—इसके सामने वह तुच्छ है। यह ज्योत्स्ना का स्रोत जब अंग को आकर छूता है, तब मेरी वह प्राणाधिका स्मृति के द्वार पर लौट कर खड़ी होती है। वह मधुर मुसकान,—उस मुसकान से मन का अन्धकार दूर हो जाता है, संसार का मुख सुन्दर मालूम होता है—स्त्री जाति के प्रति एक श्रद्धा होती है, मनुष्य पर अनुराग होता है,—जिस मुसकान को देखते ही सहृदयता आती है—वह मधुर मुसकान तो दिखाई नहीं देती है, परन्तु उसको अवश्य—देख पाता हूँ, और उसको देखना ही सुख है। जो जिसको प्यार करता है, उसकी छाया देखने से भी वह सुखी होता है। उस चाँद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

से मुखड़े को मन के भीतर ठीक से चित्रित तो नहीं कर सकता, परन्तु कहा तो था–कि जिसकी छाया को सोचने से भी भाव का हिल्लोल उठता है, मैं उसी में मस्त हो जाता हूँ। यहाँ विश्व रचना की भी कुछ कारीगरी है। जो जिसका प्यार करता है, वह उसका मुखावयव ध्यान में नहीं ला सकता। ऐसे ही तो मारे आँसुओं के पथ नहीं दीखता, उस पर यदि वह कुहक से भरा हुआ मुखड़ा निरन्तर आँखों पर लगा रहता, तो जीना दुश्वार हो जाता। इसमें कारीगर की कितनी बहादुरी है, यह वह कारीगर ही जानता है; परन्तु इसका यथार्थ कारण बताना कठिन नहीं है। बात क्या है जानते हो, सब अंगों को एक साथ कभी देखा नहीं है। केवल दो ही तो आँखें हैं; जब जिस अँग पर पड़ीं उसी अंग पर आँखें बँध गईं–मस्त हो गईं। उस अंग के अनिर्वचनीय लावण्य हिल्लोल में मस्त हो गईं। दो अंगों को एक साथ कभी नहीं देखा। इसी लिये ऐसा होता है, उन अधर पल्लवों को ध्यान में ला सकता हूँ, उन नेत्रों को ध्यान में ला सकता हूँ, उस अतुल ललाट को भी ध्यान में ला सकता हूँ, उस अपूर्व नासिका को ध्यान में ला सकता हूँ; उन अधरों पर वह मुसकान, उसको भी ध्यान में ला सकता हूँ; उन आँखों की उस दृष्टि को ध्यान में ला सकता हूँ, उस ललाट पर के उस गरिमा को भी ध्यान में ला सकता हूँ;—परन्तु उस मुखड़े को ध्यान में नहीं ला सकता। एक एक कर सब अंग ही मानस पट

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पर दीखने लगता है, परन्तु सब अंग एक साथ दिखाई नहीं पड़ता। एक एक कर सब अंगों को दिन में सहस्र बार देखता हूँ, किन्तु एक साथ सब अंग कभी नहीं देखा, और एक बात—उस मुखड़े का वह कैसा एक अपूर्व भाव-विकाश था—आकृति में गठन डूबा रहता था।

स्वप्न में एकाध दिन देखूँगा,—वह सुख भी कभी भाग्य में बदा नहीं है। उसे स्वप्न में भी कभी नहीं देखा, लोग कहते हैं जिस विषय को सर्वदा चिन्ता की जाती है, वही स्वप्न में दिखाई देती है। बात झूठ है। स्वप्न हो और चाहे कुछ हो, सब ही नियमाधीन है। चाहे स्वप्न में हो अथवा जाग्रतावस्था में हो, भाव साहचर्य के नियमानुसार ही भावास्मृति घटती है। जो दो भाव परस्पर सम्बन्ध बद्ध हैं, उसका एक आने पर दूसरा भी आता है, वृक्षतल पर बालकावस्था में मिट्टी से खेला करता था, उस वृक्ष को देखने से अथवा उसकी बात सोचने से फिर वे बातें याद आती हैं! वह बाल्यावस्था, वह उपस्थितोमाद, वह शून्य चित्त, वे खेल के साथी, वह अनर्थक कलह, वह अनर्थक आत्मीयता, वह अभिनव संसार ? वह सुन्दर हृदय, वह अकारण रोदन, वह अकारण हास्य,—वह सब जग जाती हैं; कारण ये परस्पर सम्बन्ध बद्ध हैं, वृक्ष और शैशव सुख दुःख, इनमें से एक की बात जब सोची है, तब दूसरे की बात का भी विचार किया है। परन्तु उसको तो कभी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

किसी के साथ संयुक्त करके नहीं सोचा। जब केवल उसको सोचा है तो केवल उसी को सोचा है। उस एक भाव से ही हृदय भर उठा है। परन्तु मैं कह क्या रहा था—

असार संसार में देखा कि सुख नहीं है। केवल मेरे लिये ही नहीं, पहले भी बराबर ऐसा ही होता आया है। परन्तु गतानु-स्मरण मेरे लिये काल हो गया है। दुःख तो सभी भोगते हैं; परन्तु था क्या और हुआ क्या, बस इसकी तुलना करते ही कलेजा टूक टूक हो जाता है। दिल फटने लगता है❀। मरूँगा मरूँगा सोचने पर भी मर नहीं सकता। दुःख की बात क्या कहूँ, उस दिन नौका पर बैठकर कहीं से घर लौट रहा था। भागीरथी-हृदय पर अन्धकार-संश्लिष्ट-ज्योत्स्ना में, नक्षत्र खचित नील-चन्द्रातप के नीचे बैठकर न जाने क्या क्या सोच रहा था—दुःख का परिणाम, नैराश्य की कातरता, स्नेह की व्याकुलता, हृदय की दशा, नवयौवन की चञ्चलता, आशा की छलना,—न जाने क्या

❀ "Could I forget
What I have been, I might the better bear
What I am destined to. I am not the first
That have been wretched; but to think how much
I have been happier."
—Southren, Innocent Adultery

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

खाक सब सोच रहा था। कौन सी तिथि थी, यह याद नहीं पर चन्द्रमा निकल रहा था। चन्द्र-रश्मि अन्धकार के साथ आलिंगन करती हुई गंगाजल पर लोट रही थी। इसी समय दूर बहुत—दूर पर किसी ने टोड़ी रागिनी से गाया;—

"प्रिय की विछोह में,
गया नहीं क्यों प्राण देह से।"

मृदु—समीरण ने उस सुधा को कर्ण-विवर में ढाल दिया। छाती में ध्वनि हुई—धप्—धप्—धप्,। कोई मानों छाती पर से हो कर चला गया। प्राण के भीतर से प्राण के कानों में किसी ने कहा,—जाह्नवी का गर्भ शांति—निकेतन है। मनमें विचारा, मर क्यों न जाऊँ? इस संगीत को सुनते सुनते जाह्नवी के जल में डूब कर उसको खोजूं क्या? जब आशा नहीं है, तब इस तुच्छ जीवन को क्यों लादे लादे फिरूँ? कुछ भी हो, मर न सका। स्नेह-मयी जननी की याद आ गई। आज भी संसार में केवल एक सुख

विधू—बाबू की रचना है—इस गाने का दूसरा अंश अश्राव्य है। बुरी चीजों की अच्छाई को चुन लेना अपराध नहीं है। वह समय टोड़ी रागिणी का नहीं था, परन्तु गान की कथा (मैंने यही एक छत्र सुनी थी) मधुर मालूम हुई। दिन में विहाग न गाओ, रात को विहाग न गाओ, इन बातों का अर्थ मेरी समझ में नहीं आता। समय विशेष में रागिनी विशेष भी अच्छी मालूम होती है, यह ठीक है परन्तु इसका अर्थ यह किस शास्त्र में लिखा है कि और समय अच्छी न लगेगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

है। घर पहुँच कर, "मां" कह कर पुकार लेता हूँ सब बन्धन टूट गया, केवल यही एक बन्धन रह गया है। केवल उस एक माँ शब्द को पुकारने के सुख से ही आज भी इस रावण की चिता को कलेजे पर थामे हुए हूँ। रोग हो, शोक हो, दुःख हो, माँ कह कर पुकारने से मानों सब सन्ताप दूर हो जाता है। फिर मानों वही वाल्यकाल लौट आता है। फिर वही चिन्ता शून्य, सदानन्द-चित्त अबोध शिशु हो जाता हूँ। उस स्नेह पूर्ण मुख की ओर देखते हुए नाचते नाचते मिठाई मांगता हूँ—दे माँ दे माँ! क्यों नहीं देती है, कह कर आँचल पकड़ कर खीचता हूँ, लोट जाता हूँ। जिसने कभी माँ-मय मातृभाषा में माँ कह कर नहीं पुकारा, उसका मनुष्य जन्म ही व्यर्थ है। स्नेह की गम्भीरता, मनुष्य-हृदय की मधुरता, स्त्री जाति की मधुरता, स्त्री जाति की पवित्रता, उसने कुछ न जाना। बन्धु बाँधव, पुत्र कन्या, जीवन-सहचारी स्त्री—सब स्नेह करते हैं; किन्तु माँ की भांति स्नेह किसका है? परन्तु ऐसा भोला मन है कि एक बात कहता हूँ तो दूसरी बात—आ जाती है।

सदा यही चाहता हूँ—तुम अच्छी रहो, तुम सुखी रहो,—और मैं तुम्हारे साथ रहूँ। तुम अवश्य अच्छी ही हो, कारण तुम जहाँ गई हो, वहाँ कोई दुःख की बार्ता नहीं जानता, अथवा जानता है या नहीं—मैं नहीं जानता।—कारण उस अपरिज्ञात अनाविष्कृत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

देश में जो एक बार जाता है, वह लौटता नहीं है ❀। दुःख केवल इस बात का है, कि मैं तुम्हारे पास नहीं रह सका। और दुःख यह भी है कि तुमसे विच्छिन्न होकर भी जीवित रहना पड़ा।

हाय ! मैं मानव क्यों हुआ था ? वह मानवी क्यों हुई थी ? इस सरोवर के तीर पर दोनों तरु क्यों नहीं हुए ? एक दूसरे से आलिंगन करते हुए झालर की तरह झूलते। दोनों सरोवर के स्वच्छ जल में एक दूसरे के मुख का प्रतिबिंब देखते। रजनी शशांक की रजत-तार में, माला गूंथ कर तुम्हारी वेनी को सजा देता और मस्तक बढ़ा कर तुम्हारे कुसुम हार को अपने गले में पहनता। तुम्हारे सौन्दर्य से अपने को सजा कर और अपने सौन्दर्य से तुम को सजा कर, एक दूसरे पर ढल पड़ते, प्रेम को फैला देते। पूर्णिमा की रात में ज्योत्स्ना को पकड़ कर दोनों खेलते। मुट्ठी मुट्ठी ज्योत्स्ना पकड़ कर मैं हँसते हँसते तुम्हारी ओर फेंकता, तुम लोक लेतीं। फिर तुम भी हँसते हँसते मेरी ओर जब फेंकतीं तो मैं लोक लेता। शशिहीना—निशा में क्षीण नक्षत्र्यालोक में, हीरक-खचित नील चन्द्रातल पर, मानस में सुख-स्मृति की तरह, स्मृति में सुख स्वप्न की तरह, सुख स्वप्न में तुम्हारे चांद से मुखड़े की तरह, आलोक

❀ The undiscovered country, from whose bourne
No traveller returns"
—Shakespear. Hamlet's Soliloquy

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

के आवरण में मुँह ढाँक कर, भावावेग से आँखें मूँद कर, निस्पंद होकर, दोनों बैठे रहते। कहीं इस आनन्द के समय पापी समीरण आ कर कान के पास हाय हाय करता तो? इतने सुख के समय, ऐसे अमृतह्रद में अवगाहन करते समय, यदि पवन आकर गाता, —हाय हाय, तो दोनों सिर हिला कर एक ताल से, एक सुर से, एक ही रागिणी में, सधे हुए कण्ठ से, गले से गला मिला कर, दोनों गलों को एक कर सम्भ्रूभंग से कहते—सर, सर, सर,—इतने आनन्द, उत्सव और उल्लास के समय भी सिवाय हाय हाय के कोई बात नहीं—हट, हट, हट। परन्तु ऐसा कौन सा पुण्य किया है, कि इस जले—भाग्य में वह सुख बदा होगा!

इस संसार में कौन कैसा भाग्य लेकर आता है, कहना कठिन है। सुख में सब का अधिकार बराबर है। सुखी कोई भी नहीं है—कोई प्रहार वेदना से कातर है तो कोई परितृप्ति वृश्चिक दंशन से कातर है। सब के अलग अलग पथ हैं, परन्तु जहाँ सब पथ आकर मिले हैं, वहाँ केवल हाहाकार है, आँसू है और हृदय का शोणित है। चाहे जिस पथ से होकर जाओ, इस पथ पर आकर मिलना ही पड़ेगा। सब की अभिलाषा, आकांक्षा और साध का यह एक ही परिणाम है—केवल हाहाकार; देखो बन्धुओं, इस राख के संसार में किसी में कुछ नहीं है। धन, जन, सहायक, सम्पत्ति, पद, मर्यादा, विद्या, ख्याति, सब झूठ है—मन का अनल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

किसी तरह नहीं बुझता। सुख-तृष्णा में जो स्वच्छ सरोवर प्रतीत होता है; अग्रसर होकर देखता हूँ वह सरोवर नहीं, संसार मरुभूमि में कल्पना-रश्मि संभूत मरीचिका मात्र है। इसी दुःख से तो—

"रोता है दिल मेरा, दिल के अन्दर लोट कर"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सप्तम पुष्पांजलि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शयन-मन्दिर में—

वह राम भी नहीं हैं, न वह अयोध्या ही है। यह महाश्मशान ही एक दिन प्रेमोद्यान था। नीलाकाश में जैसा शरद् का चन्द्रमा, जाह्नवी के जल में जैसे वसन्त की वन–शोभा, रमणी के अधरों पर जैसी मधुर मुस्कान, इस संसार में यह मन्दिर भी एक दिन वैसा ही था। खैर उन सब बातों से अब लाभ ही क्या ?

जिस समय की यह बातें हैं, उस समय यह संसार अमरावती प्रतीत होती थी। यह गृह उस अमरावती का नन्दन—कानन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

के तुल्य था, उस नन्दन कानन में एक कल्पद्रुम, प्रस्फुटित-पारिजात आवृत होकर, अन्तर-बाहर आलोकित करता हुआ विराजता था। और मैं उस पारिजात के सौरभ में विभोर रहता था। वह नन्दन-कानन, वह सुख कुंज अब मेरे लिये अरण्य हो गया। गृह मेरा अरण्य हो गया। इस अरण्य में मैं सन्यासी हूँ—क्या मेरा हृदय फूल फूल पर, नक्षत्र नक्षत्र पर, श्मशान श्मशान पर भिक्षा मांगता फिरता है। मेरे मन ने भी सन्यास ले लिया है। और किसी में भी मन नहीं है। मन में जो उच्चाभिलाषायें थीं, वे मन ही में विलीन हो गई हैं! अन्तर में जो साध थीं वे अन्तर के ताप से जल गईं। आशा कर ही नहीं सकता, यह बात नहीं है। मैं मूर्ख हूँ यह मैं स्वीकार करता हूँ, परन्तु संसार में देख रहा हूँ, मेरी अपेक्षा महामूर्ख भी अनेक हैं। आशा कर ही नहीं सकता, यह बात नहीं है; परन्तु आशा करने की अब इच्छा नहीं होती। प्रतिपन्न होकर क्या होगा? प्रतिपत्ति लेकर क्या करूँगा? देखेगा कौन? दिखाऊँगा किसको? जिसका हिस्सा लेने को कोई है नहीं, उससे प्रयोजन क्या? धन किसके लिये उपार्जन करूँगा? ज्ञान वृद्धि करूँगा—किसके लिये? संसार धर्म करूँ किसके लिये? मेरा है ही कौन? मैं अकेला हूँ। इस विपुल संसार में, इस असीम जीव-समाकीर्ण संसार में मेरा है ही कौन? इसलिये अब किसी विषय में मन नहीं लगता। अब मन है, केवल मृत्यु में। परन्तु मृत्यु जिसके लिये

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मंगलप्रद हो, उसकी मृत्यु नहीं होती। जिसके मरने पर दस जन रोयेंगे वह ठीक मर जाता है, और जिसके मरने के बाद कोई रोने वाला नहीं, वह नहीं मरता। परन्तु हाँ क्या कह रहा था, भूल गया—

मेरा घर नहीं है। संसार ढूंढ़ डाला, लेकिन जिसको लोग घर कहते हैं, वह तो नहीं दीखता। इस संसार में जो स्थान स्वर्ग से भी बड़ा हो—वह नहीं दीखता। जहाँ जाने से शोक ताप भूला जा सके यंत्रणाओं का अवसान हो, दुःखों का शेष हो, सब रोगों का उपशम हो, सब अन्धकार अन्तर्हित हो, सब अनल निर्वापित हों, जहाँ चिर-वसन्त विराजित हो, चिर-प्रेम-प्रवाहिणी प्रवाहित हो—मेरे लिये वैसा कोई स्थान नहीं है। हाय! क्या था, और क्या हो गया? पहले कोई दुःख ही नहीं था, यह कौन कहता है? दुःख क्यों नहीं था—यह मनुष्य जन्म ही दुःख भोगने के लिये है। दुःख तो अवश्य था; दुःख सदा से था! शैशवावस्था में भी था। कितने दिन माता की गोद से छोटी छोटी उँगलियों को संचालित करता हुआ चन्दमा को बुलाता था। मनुष्य, हृदय सदा सौन्दर्य का भिखारी है—केवल आयु विशेष से रुचि परिवर्तन होता है। उस समय चन्द्रमा को ही सर्वापेक्षा सुन्दर समझता था। तदोपेक्षा सुन्दर पदार्थ भी संसार में है, यह बाद को देखा। हाथ हिला कर, आ आ कहता हुआ चन्द्रमा को बुलाता था। सोचा करता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

था आ रहा है। मारे आनन्द के माँ की गोद में नाचने लग जाता था—महा आनन्द में दोनों हाथ से अपना पेट बजाने लगता था, माँ के मुख को दबा कर केशों को खींचता था। फिर लौट कर देखता था चन्दमा नहीं आया, फिर छोटे छोटे हाथों से माँ के हाथ को पकड़ कर उस हाथ को हिला कर बुलाता था, फिर भी नहीं आता था। माँ बुलाती थी, फिर भी नहीं आता था। तब रोते रोते सो जाता था। दुःख नहीं था, यह कौन कहता है? कितने दिन पालतू बिल्ली के साथ खेलना चाहता था, वह नहीं खेलती थी, बैठने के लिये कितने निहोरे करता था, वह मानती न थी, पूँछ पकड़ कर बिठलाना चाहता था, फिर भी म्याऊँ म्याऊँ करती हुई चली जाती थी,—दुःख नहीं था, यह कौन कहता है? तण्डुल कण की लालच से कितने दिन कितने सुन्दर पत्ती आते थे, खेलने की आशा से निकट जाता था,—उड़ जाते थे, कितने दिन अपने मन ही मन खेलता था, माँ आ कर गोद में उठा कर खेल खराब कर देती थी;—दुःख उस समय भी था। गहरी साँस भरा करता था। परन्तु उस साँस में और आज की साँस में बहुत अन्तर है। उस समय एक एक लम्बी साँस के साथ हृदय का एक एक बोझा उतर जाता था, आज एक एक गहरी साँस भरता हूँ और साथ ही एक एक चुल्लू रक्त सूख जाता है, हृदय यंत्र की एक एक तार टूट जाती है, संसार बन्धन की एक एक गाँठ खुल जाती है। पहले की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वह लम्बी साँस इस प्रकार रक्त नहीं पीती थी ❀ उस समय भी दुःख था अवश्य; परन्तु हाय ! मृत्यु क्यों नहीं होती, यह कह कर कभी दुःख नहीं करना पड़ा था ।

वह दुःख चला गया—अब सोचता हूँ वह सुख गया—वह दुःख गया, फिर नवीन दुःख की सृष्टि हुई । वह दुःख भी गया—कुछ भी सदा के लिये बना नहीं रहता । सब ही जाता है; प्रभेद इतना ही है कि जिसका भाग्य अच्छा है उसका एक एक कर रह सह कर जाता है; और मेरी तरह जो अभागे हैं, उनका एक ही दिन में एक ही दण्ड में एक ही मुहूर्त में एक क्षण में ही सब वह जाता है । देखते देखते आशा का घर, सुख का मन्दिर, जीवन-लता का आश्रय-तरु प्रकृति का रम्यतम चित्र, सब हवा में पिघल कर उड़ गया । वह सुख का दुःख भी गया ! हाय ! वह

❀ All fancy-sick she is, and Pale of cheer,
With sighs of love that cost fresh blood deer
Midsummer Night's dream,

Again
"Might liquid tears, or heart offending groans,
Of blood consuming sighs, recall his life,
I would be blind with weeping, sick with groans.
Look pale as primrose with blood drinking sighs."
Henry VI.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दुःख गया क्यों, और यदि गया ही तो मैं क्यों रह गया ? वह दुःख गया, फिर नवीन दुःख की सृष्टि हुई; यह नवीन दुःख कैसा है, वह इस छाती को चीर कर देख लो। दुःख नहीं था, यह कौन कहता है ? दुःख था, परन्तु वह इस तरह हृदय को अवसाद—ह्रद में डुबोता नहीं था—विषाद सागर पर स्थिर रख कर, भीतर भीतर ऐसा तरंग नहीं उठाता था। मेरी भांति दुःखी दूसरा और कौन है ? मुझे आते देख कर, अब किसके उज्वल नेत्र उज्वल-तर हो उठेंगे ? अब किसके मधुर अधरों पर मुस्कुराहट खेलते देख कर, हृदय में ज्योत्स्ना खिलेगी—हृदय में वसंत का समीरण प्रवाहित होगा ? उस समीरण के प्रवाह का जिस दिन अंत हो गया, उस दिन से न जाने कैसा पागल सा हो गया हूँ—क्या खाक़ बकता रहता हूँ। उस दिन मन के प्रधान बन्धन सब टूट गये। मन संसार से वियुक्त सा हो गया—मानो शून्य पर झूल पड़ा होऊँ। उस दिन से न जाने कैसा हो गया हूँ; कहीं एक मधुर शब्द सुनते ही—कुछ सुन्दर सा देखते ही, मन उदास हो जाता है,—शून्य में, पृथ्वी में, आकाश में, संसार में फैल जाता है।—किसकी खोज में, यह कौन कहेगा ? जिसकी खोज में—उसे कौन खोज देगा ? परन्तु—उस मुखड़े को स्थिर दृष्टि से देख कर, उसकी लावण्यलीला को देख कर, उसकी बातें सुन कर जो सुख मिलता था, वह सुख स्वर्ग में भी नहीं है। उसके प्रत्येक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वाक्य के बदले में यदि एक एक सौर-जगत् भी दे दिया जाता, तौभी उपयुक्त प्रतिदान न होता—एक एक मानसिक वृत्ति भी अगर निकाल कर दे दी जाती तौभी योग्य मूल्य न होता। परन्तु इतने सुख में भी दुःख आ खड़ा होता था। मुखड़े को अच्छी तरह देखने की सुविधा नहीं होती थी। दीप—आग लगे उस दीप के भाग्य में!—दीप यदि मेरे पीछे रहता, तो मेरे मुख की छाया उसके मुख पर पड़ती, यदि उसके पीछे रहता, तो उसके मुख पर प्रकाश नहीं पड़ता। यह देखो संसार पद्धति की एक असंपूर्णता! हम चाहे जैसे भी रहें, प्रकाश प्रतिनियत उसके मुख पर क्यों नहीं पड़ती? संसार पद्धति में दोष नहीं है, यह कौन कह सकता है? इससे ईश्वर पर दोषारोप होता है, परन्तु ईश्वर कैसे हैं, ईश्वर क्या हैं, वह तुम और हम क्या समझ सकते हैं? संसार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में तुम और मैं क्या जान सकता हूँ? यदि कुछ जानता हूँ तो वह इतना ही कि वह अज्ञेय है। परन्तु क्या कह रहा था—

क्या था और क्या हुआ! एक के अभाव से सब चला जाता है—आशा, भरोसा, सुख, सब शेष हो जाता है, यह कौन जानता था? वह क्या थी, यह कैसे कहूँ? मानो लज्जावती—लता थी। किसकी कैसी रुचि है, यह नहीं मालूम, परन्तु लज्जा ही स्त्री-चरित्र का कुहक है। लज्जा ही प्रेम का इन्द्रजाल है,—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रेम पुराना नहीं होता। लज्जा-नम्र को देखते ही प्रेम फिर नवीन हो जाता है। परन्तु फिर देखो क्या कह रहा था—

कैसे कहूँ वह निधि क्या थी ? मानों नवकुसुमित—लता थी अपने सौन्दर्य के बोझ से आप ही विनत थी; मानों श्रावण की नदी थी,—अपने लावण्य में आप ही मग्न ! परन्तु हाय रे दशा ! जब तक वह थी, तब तक उसका मर्म न समझा। अब जैसे ही संसार शून्य हो गया कि दशोदिक् अन्धकार हो गया, गृह अरण्य हो गया, हृदय अवलम्बन—शून्य हो गया। अब उसको पहचाना है। मनुष्य जब तक रहता है, तब तक उसका मर्म कोई नहीं समझता। कवि गुरु हो कर एक मुष्टि भिक्षा के लिये द्वार द्वार पर फिरते थे ! वस्तु जब तक रहती है, तब तक उसका आदर नहीं होता। तब समझता था कि सदा ऐसा ही रहेगा। सोचता था कि, इस प्रणय का विच्छेद नहीं है। एक दिन अकस्मात मेरे विश्वास पर वज्रपात हुआ ! उस दिन हृदय का पंजर धँस गया। उस दिन से यह हृदय, फिर सिर उठा कर खड़ा न हो सका। उठाना तो चाहता है, पर सिर लोट पड़ता है। कैसा मानों उदासीन सा हो गया हूँ। जीवन को धारण कर रखने से सब काम करना पड़ता है। सब काम करता हूँ, किन्तु वह इसीलिये कि न करने से न चलेगा। यह हृदय समाधिक्षेत्र हो गया। सुख की समाधि, आशा की समाधि, उत्साह की समाधि, प्रणय की समाधि, भाव की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

समाधि जिस किसी को लोग समाधि कहते हैं—चैतन्य छोड़ कर उन सब की समाधि। कितने भाव मन में आते हैं, परन्तु हृदय को स्पर्श नहीं करते—हृदय के चारो ओर घूमते रहते हैं, स्पर्श नहीं करते। केवल एक भाव जगा हुआ है। मध्य समय में पोप-साम्राज्य जिस प्रकार—रोमसाम्राज्य की प्रेतात्मा की भांति, रोम-साम्राज्य की समाधि पर बैठा था, मेरे हृदय में, भाव समाधि के ऊपर भाव की प्रेतमूर्ति उसी प्रकार समाधि पर बैठी है।* इतने दिन हो गये नहीं देखा, किन्तु फिर भी वह—

"चाँद से मुखड़े की हँसी दिल में जग रही है।"

यह शयन मन्दिर—कहा न कि, एक दिन बड़े सुख का स्थान था। आज आवारा हो गया हूँ; सदा ही कुछ ऐसा न था। एक दिन, यहाँ पर आने के पहले, भूत भविष्य को छोड़ कर आना पड़ता था। भाव से ढल कर गल जाता था—मैं अपने में न रहता था; और आज उस स्थान पर आते मुझे भय लगता है। भय लगता है—

"कैसे जायब जमुना तीर।
कैसे निहारिब कुंज कुटीर॥"

क्या था—क्या कहूँ? उस अनल पर घृताहुती देने से अब

---

*There is a belief among the vulgar in Europe that the ghosts of the dead haunt their graves.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लाभ ही क्या ? क्या मानों हो गया है, वही देख रहा हूँ। गृह अब गृह नहीं है। दीनबन्धु! यह क्या किया है ? विग्रह शून्य मन्दिर की भांति, विसर्जित प्रतिमा के पाट की भांति, जीवशून्य जनपद की भांति, मध्याह्न मरुभूमि की भांति, मेरे हृदय की भांति, गृह में मानों सन्नाटा छा रहा है। गृह दाह की भांति, प्राणाधिका की चिता की भांति, अन्तर और बाहर लकलकाता हुआ जल रहा है। वह घर मेरा कहाँ है ? इस आकाश पर जो चन्द्रमा था, वह कहाँ है ? इस सरोवर में जो प्रमोदतरणी तैरती थी, वह कहाँ है ? हा प्रभो ! यह दशा किसने की ? सुख-लता पर बज्राघात हो गया है—परन्तु न रहना ही अच्छा था। जननी की आँखों के सामने मानों जननी की एकमात्र सन्तान को व्याघ्र खा रहा हो—है जीवित है, परन्तु अनाथ नाथ ! यह रहना कैसा ? मानों आजीवन सञ्चित धन को कोई सन्दूक तोड़ कर ले गया हो—हरे ! हरे ! कुल क्रमागत पैतृक वासगृह जल गया है—जला हुआ गृह पड़ा हुआ है—क्यों देखा ? देखने के पहले मर क्यों न गया ?

सब ही है—किन्तु मानों आँखें सब की बन्द हैं—न जाने किसके विरह में विषण्ण ! सब-मानों न रहने का कोई उपाय नहीं है, इसलिये है—मानों सब मृत मनुष्य के प्रेत की भांति, मानवशून्य ग्राम की भांति, उत्साह शून्य हृदय की भांति,—मानों, मानों—गृहिणी शून्य गृह की भांति, सब म्लान, सब अवसन्न निर्जीव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

और कातर हैं। गृह शोभा की वे सामग्रियाँ वैसी ही सजी हुई हैं—हाय दग्ध अदृष्ट ! हाय निदारुण विधाता !—उनमें वह सौन्दर्य नहीं रहा,—वहु दीप समुज्वल गृह में, रमणी मधुर—कण्ठ निर्गत, कृष्ण–राधिका के मधुर प्रेमात्मक संगीत की भांति वह विभोर भाव—प्रातःकाल की भैरवी रागिणी की भांति, शेष रजनी की विदाई—गीत की भांति, नव–वसन्त के समागम में, मृदु–मन्द—नैशसमीरण में, विरह—संगीत की भांति ! प्रणयी के प्रथम प्रेमालिंगन की भांति, अस्फुट चन्द्रालोक में बालिका के लज्जावरुद्ध प्रेमालाप की भांति, वह विभोर भाव, अब नहीं है। सब न जाने कैसा हो गया है ! मैं भी न जाने कैसा हो गया हूँ। हूँ—जीता तो हूँ, परन्तु न जाने कैसा हो रहा हूँ !

फल-पुष्प-पत्र शोभित वृक्ष पर वज्राघात होने से जिस तरह पत्र, फल, पुष्प सब जल जाते हैं, शाखा प्रशाखायें राख हो जाती हैं,—मगर वृक्ष रहता है—अग्निदग्ध शुष्क वृक्ष, पूर्व की मानों एक स्मृति हो, यह अधमाधम भी उसी तरह हो रहा है।

महासागर में अर्णवजान प्रभञ्जनाक्रांत होने पर जैसे पाल उड़ जाता है, मस्तूल उड़ जाता है, द्रव्यजात–सह नर नारी सागर गर्भ में समाधिगत होती हैं; सब जाता है, केवल निम्न भाग ही अनन्त श्वेत नीलविस्तृति में इधर उधर तैरता रहता है, मैं भी वैसा ही हो रहा हूँ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वज्राहत वृक्ष की भांति, प्रभञ्जन विध्वस्त अर्णवपोत की भांति, भग्नावशेष गृह–भित्ति की भांति, ध्वंशावशेष नगर की भांति, मैं हो रहा हूँ। इस पाप जीवन का यह केवल पचीसवाँ वर्ष जा रहा है; अभी और कितने दिनों तक ऐसा ही चलता रहेगा, यह केवल परमात्मा ही जानते हैं।

अरि विष सम लागय मोहिं।
हरि! हरि! पिरीत ना करै जनि कोई॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बिहार के उदीयमान कवि "प्रभात" एम० ए० का

श्वेत नील

प्रभातजी का परिचय देना सूर्य को दीपक दिखलाना है। उनकी कविताओं की श्रेष्ठता को हिन्दी के प्रायः सभी विद्वान हृदय से स्वीकार करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उनकी कतिपय अत्यन्त सुन्दर कवितायें संग्रहीत हैं। मूल्य ।।।)

अंग्रेजी का सुप्रसिद्ध दैनिक *Indian Nation* ने इस अनमोल कविता-पुस्तक की आलोचना करते हुए लिखा है—

For higher heighst and deeper depths we can look to a couple of other contemperory poets, but for the hounting melody of thought prabhat has got no compect in the Hindi world to day.

कलरव

रचयिता—विद्यालङ्कार श्री जगन्नाथ मिश्र गौड़ 'कमल'

'कमल' जी हिन्दी के एक प्रसिद्ध एवं कीर्त्तिलब्ध कवि हैं। 'कलरव' आप ही की कुशल लेखनी का चमत्कार है। पुस्तक की प्रत्येक कविता से भावों की मन्दाकिनी फूट निकली है। कविताओं को पढ़ कर मन-मयूर आनन्द से नाच उठता है। मुख से हठात् शब्द निकल पड़ते हैं "कवि तू धन्य है, तेरी कल्पना के पङ्ख गतिवान हैं, वे उड़ सकते हैं और बहुत दूर तक उड़ सकते हैं।" मूल्य १)

पता—हिन्दी-साहित्य एजेन्सी, बाँकीपुर, पटना।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE